जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2534

20वीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य

प.पू. आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज

माघ, वि.सं. 2064

फरवरी, 2008

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

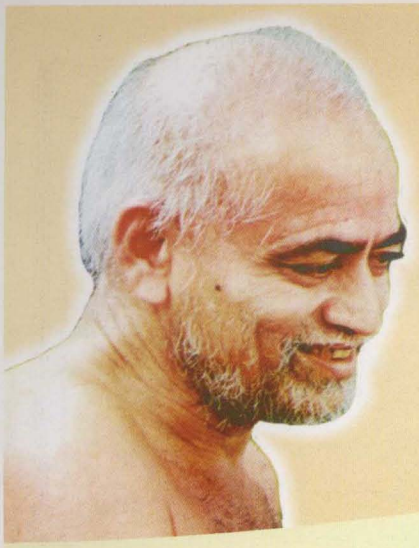

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

55

रही सम्पदा, आपदा, प्रभु से हमें बचाय।
रही आपदा सम्पदा, प्रभु में हमें रचाय॥

56

कटुक मधुर गुरु वचन भी, भविक-चित्त हुलसाय।
तरुण अरुण की किरण भी, सहज कमल विकसाय॥

57

सत्ता का सातत्य सो, सत्य रहा है तथ्य।
सत्ता का आश्रय रहा, शिवपथ में है पथ्य॥

58

ज्ञेय बने उपयोग ही, ध्येय बने उपयोग।
शिव-पथ में उपयोग का, सदा करो उपयोग॥

59

योग, भोग, उपयोग में, प्रधान हो उपयोग।
शिव-पथ में उपयोग का, सुधी करे उपयोग॥

60

रसना रस गुण को कभी, ना चख सकती भ्रात!
मधुरादिक पर्याय को, चख पाती हो ज्ञात॥

61

तथा नासिका सूँघती, सुगन्ध या दुर्गन्ध।
अविनश्वर गुण गन्ध से, होता ना सम्बन्ध॥

62

इसी भाँति सब इन्द्रियाँ, ना जानें गुण-शील।
इसीलिए उपयोग में, रमते सुधी सलील॥

63

मूर्तिक इन्द्रिय विषय भी, मूर्तिक हैं पर्याय।
तभी सुधी उपयोग का, करते हैं 'स्वाध्याय'॥

64

सर परिसर ज्यों शीत हो, सर परिसर हो शीत।
वरना अध्यातम रहा, सपनों का संगीत॥

65

खोया जो है अहम में, खोया उसने मोल।
खोया जिसने अहम को, खोजा धन अनमोल॥

66

प्रतिभा की इच्छा नहीं, आभा मिले अपार।
प्रतिभा परदे की प्रथा, आभा सीधी पार॥

67

वेग बढ़े इस बुद्धि में, नहीं बढ़े आवेग।
कष्ट-दायिनी बुद्धि है, जिसमें ना संवेग॥

68

कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्प काल भी मौन लूँ, चलता अन्तर्जल्प॥

69

पर घर में क्यों घुस रही, निज घर तज यह भीड़।
पर नीड़ों में कब घुसा, पंछी तज निज नीड़॥

70

कहीं कभी भी ना हुआ, नदियों का संघर्ष।
मनुजों में संघर्ष क्यों? दुर्लभ क्यों है हर्ष?॥

71

शास्त्र पठन ना, गुणन से, निज में हम खो जायें।
कटि पर ना, पर अंक में, माँ के शिशु सो जायें॥

72

दृश्य नहीं दर्शन भला, ज्ञेय नहीं है ज्ञान।
'और' नहीं आतम भला, भरा सुधामृत-पान॥

'सूर्योदयशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

फरवरी 2008 मासिक वर्ष 7, अङ्क 2

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे — आ.पृ. 2
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ — आ.पृ. 3
- ◆ **सम्पादकीय** : आगम-विरुद्ध आचरण परम्परा नहीं है — 2
- ◆ **प्रवचन**
  - चरण आचरण की ओर : आचार्य श्री विद्यासागर जी — 5
  - आत्मरिणामों की परख : मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी — 11
- ◆ **लेख**
  - शिखरजी की यात्रा और बाई जी (धर्ममाता चिरौंजीबाई जी) का व्रतग्रहण : क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी — 13
  - चतुर्थकाल के मुनि आचार्य श्री विद्यासागर जी : स्व. पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री — 16
  - कुन्दकुन्द और उनका जन्मस्थान : श्री पी० बी० देसाई — 18
  - लोकगीतों में कुण्डलपुर और बड़े बाबा : श्रीमती डॉ० मुन्नीपुष्पा जैन — 22
  - श्री पाहिल्ल श्रेष्ठी : पं० कुन्दनलाल जैन — 25
  - बच्चों को यौन-शिक्षा : डॉ० श्रीमती ज्योति जैन — 27
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 29
- ◆ **समाचार** — 17, 31, 32 एवं आ.पृ.4

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

आगमविरुद्ध आचरण परम्परा नहीं है

हमारा देश और समाज साधु के प्रति अतिश्रद्धा रखता है। इसका एक मात्र कारण उसकी साधुता है। राग-द्वेष से रहित, वीतरागता की ओर उन्मुख आत्म-केन्द्रित चर्चा और चर्या के कारण वे पूज्य माने गये हैं। जिन साधुओं ने जिन मार्ग का अवलम्बन लिया है, वह आचार्य श्री कुन्दकुन्द, आचार्य श्री उमास्वामी और आचार्य श्री समन्तभद्र आदि का मार्ग है, जिसमें सांसारिक अनासक्ति का भाव अन्तर्निहित है। इस मार्ग के विषय में आचार्यश्री समन्तभद्र 'युक्त्यनुशासन' में कहते हैं-

दयादमत्यागसमाधिनिष्ठं, नयप्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रमादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम्॥ 6॥

अर्थात् हे वीर जिन! आपका मत दया, दम, त्याग और समाधि की निष्ठा, तत्परता को लिए हुए है। नयों तथा प्रमाणों के द्वारा सम्यक् वस्तुतत्त्व को बिल्कुल स्पष्ट करनेवाला है तथा दूसरे सभी प्रवादों से अबाध्य है, अद्वितीय है। यहाँ स्पष्ट भाव है कि भगवान् महावीर का मार्ग दया अर्थात् अहिंसा, दम अर्थात् इन्द्रियों विषयों के प्रति संयम, त्याग अर्थात् राग-द्वेष का विसर्जन और समाधि अर्थात् जीवनान्त में काय और कषायों को कृश करते हुए सल्लेखनापूर्वक शरीर का त्याग करना है। आचार्य श्री उमास्वामी ने यह अवधारणा- 'मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता' के रूप में प्रस्तुत की है। हे भगवन्! आपने जिस वस्तु (आत्म) तत्त्व को उपादेय बताया है वह नय और प्रमाणों के द्वारा स्पष्ट और पुष्ट है। इसका किसी भी अन्य मत या रीति से खण्डन नहीं किया जा सकता।

उक्त स्पष्ट दिशा-निर्देश के बावजूद आज देखने में आ रहा है कि हमारे समाज में ऐसे अनेक कार्य हो रहे हैं जो आगम की कसौटी पर किसी भी नय की अपेक्षा से खरे नहीं उतरते। भरतक्षेत्र के चौबीस तीर्थंकरों की उपेक्षा करके विदेहक्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकरों और उनमें भी मात्र श्री सीमंधर स्वामी की प्रतिष्ठा की जा रही है। नव निर्माण और नयी विचार-धारा का जो दौर प्रारम्भ हुआ, तो अब थमने का नाम नहीं ले रहा है। अचार्य श्री समन्तभद्र, आचार्य श्री कुन्दकुन्द की वाणी की व्याख्या के नाम पर अपलाप किया जा रहा है। अति सक्रियता से आगमिक जड़ता का खतरा दिखाई देने लगा है। यहाँ प्रस्तुत कतिपय उदाहरण विचारणीय हैं, यथा-

1. वर्तमान में नवग्रह जिनमन्दिरों का निर्माण और प्रतिष्ठा के आयोजन अनेक स्थानों पर चल रहे हैं, जो किसी भी दृष्टि से आगमसम्मत नहीं हैं।

2. बीसवीं शताब्दी के एक साधु के चरण और मूर्तियाँ सप्रयास आन्दोलन की शक्ल में सैकड़ों स्थानों पर स्थापित की जा रही है, क्या यह इतिहास के साथ मजाक नहीं है?

3. धरणेन्द्र और पद्मावती या अन्य यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा की जा रही है? आखिर इनमें किनके प्राण फूँके जा रहे हैं?

4. दिगम्बर मुनि/आचार्य की मूर्ति बनाकर उनका प्रतिदिन अभिषेक अरहन्तबिम्ब की तरह किया जा रहा है, जबकि वह कौन सी गति को प्राप्त हुए, यह भी ज्ञात नहीं है।

5. क्या एक साधु अपनी पुरानी पीछी जिसे वह बदलने की भावना कर चुका है या जो संयम पालन के योग्य नहीं रह गयी है उस पीछी को अपने शिष्य या अन्य आचार्य को भेट स्वरूप दे सकता है, वह भी किसी आकस्मिक स्थिति के लिए नहीं, अपितु अपना प्रेम जताने के लिए? इसी तरह यह क्या जरूरी है कि एक आचार्य या गुरु के जन्म या दीक्षा दिवस पर उसके सभी शिष्य (प्रमुख) अपने-अपने प्रवास स्थल से नयी पीछी भिजवायें, वह भी तब, जबकि एक-एक पीछी की लागत दो-तीन हजार रुपये आ रही हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. आचार्यों/आर्यिकाओं/साधुओं को दिये जाने वाले प्रशस्ति/अभिनन्दन/उपाधि पत्र क्या उनके द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं? यदि वे योग्य हैं तो फिर क्या परिग्रह का दोष नहीं लगेगा? आज अनेक साधु बड़े हर्षित भाव से अपने लिए विचित्र-विचित्र उपाधियों से युक्त अभिनन्दन पत्र ग्रहण कर रहे हैं और इन उपाधियों को अपने नाम के साथ जोड़ और जुड़वा भी रहे हैं। यदि पत्रसम्पादक उनके नाम के साथ वह उपाधियाँ नहीं लगाते हैं तो बाकायदा फोन / पत्रादि आते हैं कि खाली नाम न छापें बल्कि फलाँ उपाधि अवश्य लगायें। आज साधुओं में एम० ए०, पी-एच० डी०, डी लिट्० उपाधि विभिन्न विश्वविद्यालयों से लेने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इसके लिए वे आवेदन पत्र भर रहे हैं, इण्टरव्यू देते हैं, उपाधियाँ ग्रहण करने जाते हैं, जबकि साधु उपधि और उपाधि से रहित निस्संग होता है, ऐसा आगम वचन है, फिर भी इसकी उपेक्षा हो रही है। अध्ययन साधु के लिए आवश्यक है, किन्तु वह समीचीन आत्मज्ञान के लिए है किसी 'डिग्री' के लिए नहीं। कल के दिन इन उपाधिधारी साधुओं में अन्य उपाधिरहित साधुओं से अधिक श्रेष्ठता का भाव/मान भी जन्म ले सकता है अतः इस प्रवृत्ति पर विराम लगना चाहिए। हाँ, वर्तमान में ज्ञान की ललक को देखते हुए यह आवश्यक है कि समाज में कोई ऐसा विद्यालय स्थापित हो, जिसमें साधुगण एक निश्चित समयावधि में ज्ञानार्जन कर सकें। वहाँ सुयोग्य विद्वानों को अध्यापन हेतु रखा जाना चाहिए। वैसे तो गुरु का सान्निध्य ही पर्याप्त है, यदि वे ज्ञान-गुरु हैं।

7. आजकल साधुओं को आचार्यपद देने-लेने की प्रवृत्ति हास्य के स्तर तक बढ़ गयी है। अकेले साधु (वह भी कहीं गुरुद्रोही भी) आचार्य, एलाचार्य, बालाचार्य, ज्ञानाचार्य, उपाध्यायपद धारक बनकर विहार कर रहे हैं, यह सिलसिला रुक भी नहीं रहा है। यहाँ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्य श्री महाप्रज्ञ का आदर्श उदाहरण है जहाँ सैकड़ों साधु अपने एक ही आचार्य के नेतृत्व में चल रहे हैं और अपनी चर्चा और चर्या से प्रभावित कर रहे हैं। आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा भी यही है।

8. आजकल चर्चा इस बात की हो रही है कि 'शाकाहार प्रवर्तक' कौन? क्योंकि अनेक आचार्य, उपाध्याय अपने नाम के साथ 'शाकाहार प्रवर्तक' उपाधि जोड़ और जुड़वा रहे हैं। यह देखकर लोग प्रश्न करते हैं कि यदि यह 'शाकाहार प्रवर्तक' हैं तो फिर इनसे पहले क्या शाकाहार चलन में नहीं था?

हम एक ओर शाकाहार को मानवीय आहारप्रणाली कहते नहीं थकते, तो दूसरी ओर स्वयं को इसका प्रवर्तक कहना क्या समाज को भ्रमित करना नहीं है? मेरा तो विचार है कि सम्पूर्ण मानवीय जीवनदर्शन के व्यवस्थित प्रवर्तक और पुरस्कर्त्ता तीर्थंकर ऋषभदेव हैं अतः उन्हें ही मानना चाहिए। इसलिए जरूरी है कि ऐसे सभी संतगण 'शाकाहार प्रवर्तक' उपाधि का अविलम्ब त्याग करें जो इसे अपने नाम के साथ जोड़ते-जुड़वाते हैं। दूसरी ओर यह भी विसंगति है कि मात्र शाकाहारी जैन समाज में ही शाकाहार का प्रचार हो रहा है, यहाँ तक कि जैनसमाज के मध्य आयोजित होने वाले सर्वधर्म सम्मेलनों का विषय 'शाकाहार' रख लिया जाता है, जिसमें मांसाहारी अन्य विद्वान्/धर्मगुरु ऐसा कहते देखे/सुने गये है कि जैनी भाइयों के बीच शाकाहार की बात कहनी पड़ रही है, यह सोचकर शर्म आती है और इस तरह एक भली शाकाहारी समाज मांसभक्षण करनेवाली प्रतीत होने लगती है। यदि यहाँ हम विषय- 'अहिंसा-दर्शन' रखें और सप्त व्यसन त्याग की प्रेरणा दें तथा मांसभक्षण की बुराइयों से अवगत करायें, तो शाकाहार के प्रति निष्ठा बढ़ेगी और मांसभक्षण के त्याग के प्रति हमारी संकल्पशक्ति और मजबूत होगी।

9. आजकल स्थान-स्थान पर महामस्तकाभिषेक होने लगे हैं पहले मात्र 12 वर्ष में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक होता था अब यह धनसंग्रह का माध्यम मान लिया गया है। इसी के साथ एक विकृति और आ गयी है कि अब यह मात्र जल तक सीमित न होकर रंग पर आ गया है। मानों हम भगवान् से होली खेलने जा रहे हों। अभी हाल ही में 'बावनगजा महोत्सव-2008' में सप्तरंगी अभिषेक चर्चित हुआ जब कि वहाँ पूर्व में मात्र जलाभिषेक की परम्परा रही है, जैसा कि विगत् 20 वर्षों से बावनगजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र कमेटी के कर्त्ता-धर्त्ता रहे श्री बाबूलाल जी पाटोदी ने एक साक्षात्कार (सन्मति-वाणी में प्रकाशित) में स्पष्ट कहा है कि 'बावनगजा में पंचामृताभिषेक की परम्परा तथा स्त्रियों द्वारा अभिषेक की परम्परा नहीं हैं' फिर वहाँ इस आयोजन में कतिपय साधुओं द्वारा जिद करना कि पंचामृताभिषेक ही होना चाहिए, यहाँ तक कि महोत्सव का बहिष्कार भी किया, क्या यह उचित है? जबकि यही लोग परम्परा की दुहाई देते हैं।

कहीं-कहीं कोई प्रभावशाली व्यक्ति साधु या आर्यिका-विशेष के आग्रह पर या छल-कपट पूर्वक दूध-दही आदि से अभिषेक करवा देता है (कहीं-कहीं आयोजकों का धनसंग्रह का लालच भी इसमें समाहित है), तो इसे परम्परा क्यों माना जाना चाहिए? एक माता जी जानबूझकर तेरापंथी-परम्परावाले तीर्थक्षेत्रों पर पंचामृताभिषेक करवाती हैं और उसकी वीडियो कैसिट/सी० डी० बनवाकर रखती हैं, ताकि कालान्तर में वहाँ पंचामृताभिषेक की परम्परा बताई जा सके, इस प्रवृत्ति पर विराम लगना चाहिए। मुझे इस बात पर घोर आश्चर्य हुआ कि कुछ साधुओं ने स्पष्ट कहा कि 'वे तो मात्र सप्तरंगी कलश देखने आये हैं। यदि ऐसा पता होता कि मात्र जल से अभिषेक होगा, तो इतनी दूर से क्यों आते?' यहाँ विचारणीय है कि इनकी निष्ठा किसमें है? जिनाभिषेक में या कि पंथपोषण में? इस विषय में श्रवणबेलगोल-2006 एवं सिद्धवरकूट 2007 में अपनायी गयी स्पष्ट नीति समाज हित में अनुकरणीय हो सकती है।

हमें पूजन-अभिषेक सम्बन्धी क्रियाओं में पक्षपाती, दुराग्रही न होकर आगमसम्मत अहिंसक क्रियायें ही उपादेय हैं। हमें सामाजिक समरसता और उचित संदेश का भी ध्यान रखना चाहिए। जिस तरह बावनगजा में जलाभिषेक के विरुद्ध वातावरण बनाया गया और दैनिक समाचारपत्रों में उसे हवा दी गयी, वह अशोभनीय है। इसकी पुनरावृत्ति से सभी को बचना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्थानीय क्षेत्र कमेटी का मौन या मूकदर्शक बने रहना चिन्तनीय है। हम जिसके नेतृत्व में कार्य करें वह भी निष्पक्ष, निर्भीक और स्पष्ट मतवाला होना चाहिए। जब यह लगने लगता है कि "माना ये हमने कि पैसा खुदा नहीं, पर सच ये भी है कि पैसा खुदा से कम नहीं" तो सब कुछ उल्टा-सीधा होने लगता है और जो हो रहा है उसे ही जायज ठहराया जाने लगता है। ऐसे अवसरों पर अन्य मतावलम्बी नेताओं द्वारा बिना शुद्धि के अभिषेक करवाना घोर आपत्तिजनक है। हमारे यहाँ कहा जाता है कि "महाजनो येन गतः स पन्थाः" लेकिन जब महाजन/महापुरुष ही अपने पद और धर्म के विरुद्ध आचरण करें तो हम किसका अनुकरण करें। समाज को इन विषयों में स्पष्ट धर्मसम्मत रवैया अपनाना चाहिए। श्री गोपालदास 'नीरज' की यह पंक्ति बड़ी मौजूं हैं कि-

साथियो! अपनी मशालें गुल न कर देना अभी,
क्या पता इस अम्न के पीछे कोई तूफान हो?

डॉ० सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

काहे को दुनिया बसायी

एक बार रास्ते में विहार करते हुए आ रहे थे। एक गाँव से गुजरना हुआ वहाँ दुकान पर एक भजन चल रहा था।

"दुनिया बनानेवाले क्या तेरे मन में समायी, तूने काहे को दुनिया बनायी।"

इस पंक्ति को सुनकर आचार्यश्री के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान आ गयी तो साथ में चलनेवाले सभी हँसने लगे। आचार्य महाराज ने कहा। ऐसा कहना ठीक नहीं बल्कि ऐसा कहो- "दुनिया बसाने-वाले क्या तेरे मन में समायी तूने काहे को दुनिया बसायी।" संसार में तुम ही फँसे हो, गृहस्थी तुमने ही बसायी है खुद को दोषी कहो भगवान् को दोषी मत कहो।

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन

चरण .... आचरण की ओर

प. पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी

मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः॥
रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सन्दर्भ- रत्नकरण्ड श्रावकाचार में मंगलाचरण के उपरांत पूज्य आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं समीचीन धर्म का कथन करूँगा जो दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक है। प्रथम अधिकार में सम्यग्दर्शन, द्वितीय अधिकार में सम्यग्ज्ञान का वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर ही धर्म संज्ञा को प्राप्त होते हैं और उस धर्म का जो सहारा लेता है, वह संसार से ऊपर उठ जाता है, संसार से दूर हो जाता है, मुक्ति सुख का भाजन बन जाता है।

वर्णन की अपेक्षा से तो सम्यक् चारित्र तीसरे नम्बर पर आता है, लेकिन उत्पत्ति की अपेक्षा से ऐसा नहीं समझना चाहिए। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन व ज्ञान दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सम्यक्चारित्र भी एक साथ उत्पन्न हो सकता है ऐसा धवला, जयधवला, महाधवला इत्यादि ग्रन्थों में वर्णन आया है। उनमें उल्लेख आता है कि वह भव्य जब जिनवाणी का श्रवण अथवा गुरुओं का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है और वह डायरेक्ट (साक्षात्) एक साथ सप्तम गुणस्थान को छू लेता है।

मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः॥

(मोह) दर्शनमोहनीय, (तिमिरापहरणे) अंधकार के अपहरण होने पर, (दर्शन) सम्यग्दर्शन, (अवाप्त संज्ञानः) उसके साथ ही सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेना (रागद्वैषनिवृत्यै) रागद्वेष की निवृत्ति के लिए (चरणं) चारित्र की ओर (प्रतिपद्यते) चला जाना चाहिए/बढ़ना चाहिए। (साधु) सज्जन/भव्य पुरुष को, अर्थात् दर्शन मोहनीय के अन्धकार के नष्ट होने पर जिसने सम्यग्दर्शन व उसके साथ ही सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, ऐसा वह भव्य सज्जन पुरुष रागद्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र की शरण में चला जाता है।

चारित्र की शरण किसलिए?

कोई भव्य जीव चरण/चारित्र की शरण ले लेता है। किसलिये लेता है? कोई कार्य करे तो उसका प्रयोजन भी होना अनिवार्य है। यहाँ क्या प्रयोजन है? 'रागद्वेष-निवृत्त्यै' रागद्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र की शरण लेता है। यदि यह उद्देश्य गौण हो गया तो चारित्र के क्षेत्र में विकास नहीं, बल्कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विनाश और सम्भव हो जायेगा। रागद्वेष जीव के लिए अभिशाप है। ये दृष्टि को, ज्ञान को, और आचरण को समाप्त कर देने वाले हैं। थोड़ी भी रागद्वेष की भूमिका बनी तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तथा अपना हित चाहनेवाला उस पथ से दूर होने लगता है। जब रागद्वेष को मिटाने का लक्ष्य बन जाता है तो चारित्र को लेना अनिवार्य हो जाता है। रागद्वेष अपने आप मिट जायें यह सवाल ही नहीं उठता। अपने आप कोई काम नहीं होता, कारण के द्वारा कार्य होता है। बाधक कारण को हटाकर साधक कारण को प्राप्त करेंगे तो हमारी कामना पूर्ण होगी। रागद्वेष से बचना चाहते हो तो चारित्र की शरण में चले जाओ और कोई भी भूमिका नहीं है। कोई छाँवदार वृक्ष नहीं है, जो हमारे रागद्वेष को मिटा सके। एकमात्र चारित्र के णस ही यह शक्ति है।

रागद्वेष को मिटाने के लिए चारित्र की शरण कब लेता है वह? 'मोहतिमिरापहरणे' मोहरूपी तिमिर/अंधकार के दूर होने पर। दर्शन का लाभ हुआ है, तो समझो दृष्टि प्राप्त हो गई, श्रद्धान हो गया कि सुख यदि मिलेगा तो आत्मा में मिलेगा, रत्नत्रय की प्राप्ति के माध्यम से ही मिलेगा। रत्नत्रय को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ को मैं नहीं लूँगा, सुख का कारण केवल अपनी आत्मा है। दृष्टि के साथ ज्ञान भी सम्यक् हो गया अब राग-द्वेष को मिटाना है, चारित्र को धारण करना है। जिस व्यक्ति को जिस पदार्थ के प्रति रुचि होती है, जब तक वह मिल न जाये, तब तक रात दिन चैन नहीं पड़ती, क्योंकि जो उपलब्ध है वह अभीष्ट नहीं है और जो अनुपलब्ध है वह इष्ट है। दावत में षट् रस व्यंजन हों पर जिसे नमकीन ही अच्छा लगता है उसके लिए बिना उसके पंगत कैसी? उसे षट्रस पकवान इष्ट नहीं हैं, क्योंकि उसमें मन नहीं है। जिस व्यक्ति को जो चीज अपेक्षित है उसी में रुचि रहती है। जब तक वह प्राप्त न हो छटपटाहट चलती रहती है। मखमल के भी गद्दे बिछे हों, किन्तु जिसे सुबह मुनि दीक्षा के लिए जाना है, तो उसे वहाँ पर भी नींद नहीं आती, मखमल के गद्दों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर भी एक-एक मिनिट कटता है, बार-बार घड़ी देखता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त होने के उपरान्त उसे राग-द्वेष को मिटाने के लिये रुचि रहती ही है, अतः वह संयम/चारित्र की शरण में चला जाता है।

चारित्र का अर्थ क्या है? आचार्य समन्तभद्र महाराज कह रहे हैं कि चारित्र का अर्थ पाँचों पापों से निवृत्ति रूप है- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह से निवृत्ति लेना चारित्र है। ध्यान रखिये कोई भी दीक्षा लेता है, सकल/देश संयम, कोई भी चारित्र धारण करता है, तो उसका लक्ष्य क्या होना चाहिए?- रागद्वेष मिटाने के लिये। चर्चा में, दृष्टि में, मन-वचन-काय की चेष्टा में, प्रत्येक समय यही लक्ष्य रहेगा कि यह चर्या मैं इसलिए अपना रहा हूँ कि रागद्वेष को मुझे मिटाना है। जिस चारित्र के द्वारा रागद्वेष मिटता है, वह सम्यक्चारित्र है। और जिस चारित्र के द्वारा रागद्वेष की उत्पत्ति होती है वह मिथ्याचारित्र है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र संसार के उन्मूलक हैं, मोक्षमार्ग स्वरूप हैं, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र मोक्षमार्ग के खिलाफ हैं। संसार के वर्धक हैं। ऐसा दृढ़ संकल्प होना चाहिए कि जब तक रागद्वेष नहीं मिटेंगे, तब तक मैं चारित्र का सहारा नहीं छोडूँगा, जब तक कार्य की प्राप्ति नहीं होती, तब तक कारण को नहीं छोड़ा जाता। मान लो कि मथानी से मंथन कर रहे हो, कब तक करते रहते हो? जब तक नवनीत की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार संयम के क्षेत्र में भी होना चाहिए।

रागद्वेष को मिटाना है, मिटाने का एक मात्र कारण है चारित्र, जो पाँच पापों की निवृत्ति रूप, पाँचों पापों से बचने रूप है। यह बचना एक ही दिन में होता है क्या? एक ही घण्टे में क्या रागद्वेष पर कन्ट्रोल कर सकते हैं। ऐसा तो सम्भव नहीं। ऋषभनाथ भगवान् को 1000 वर्ष लग गये। 1000 वर्ष तक चारित्र की शरण लेकर आदिप्रभु ने जीवन गुजार दिया। रागद्वेष नहीं मिटे, छठा/सातवां, सातवाँ/छठा गुणस्थान चलता रहा, मौन साधना चलती रही रागद्वेष को मिटाने के लिए भगवान् बाहुबली की साधना एक साल तक चली, हिले नहीं, डुले नहीं, बोले नहीं, खाया पिया नहीं। इतना कठिन तप फिर भी रागद्वेष अभी तुरन्त नहीं मिटे। श्रद्धान एक क्षण में हो जाता है, लेकिन जिसके ऊपर श्रद्धान किया जाता है, उसे प्राप्त करने के लिए एक क्षण नहीं, अपितु बहुत क्षण अपेक्षित हैं, कड़ी साधना की आवश्यकता है, तब कहीं जाकर के रागद्वेष का उन्मूलन सम्भव है।

यह चारित्र कौन स्वीकार करता है? साधु/सज्जन/भव्य। वह सज्जन जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है, दर्शन लाभ हुआ है, दृष्टि प्राप्त हो गई है ज्ञान श्रद्धान हुआ है मुक्ति के लिए साधन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही हैं यह सुख को दे सकते हैं इसके अलावा कोई नहीं, पर में मुक्ति नहीं, पर में सुख नहीं पर को छोड़ने से सुख है, पर को जोड़ने में सुख मोक्षमार्गी को नहीं, संसारी को है। संसारी का ऐसा विश्वास है अरे भैया! अपने जीवन के अन्तिम काल का क्या पता, माता-पिता तो वृद्ध हैं ही, वे तो रहेंगे नहीं, बाल-बच्चों का भरोसा क्या? 20 वीं शताब्दी का काल चल रहा है, इसलिये अपने नाम से ही, बच्चों को बताना तक नहीं, गुदड़ी में बाँधते जाओ, काम में आता है, नहीं तो अन्त में उनका है ही। इसलिये यदि अपने जीवन में सुख चाहते हो तो जोड़कर रखो। यह जोड़ना-सोचना सांसारिक सुख है और सम्यग्दृष्टि को यह विश्वास हो जाता है कि जितना जोड़ना है, वह संसार से सम्बन्ध जोड़ना है और जितना तोड़ना है, वह मुक्ति से सम्बन्ध जोड़ना है। यही कहलाता है 'अवाप्तसंज्ञान'। महाराज! यह तो बिल्कुल ही विपरीत दशा हो गई, यूँ कहना चाहिए कि सारी दुनिया पूरब की ओर जा रही है, तो साधक पश्चिम की ओर जा रहे हैं, यह अपूर्व दिशा है अपूर्व अर्थात् अद्वितीय दिशा सारा का सारा संसार, जो जोड़ने में लगा है, क्या हम उसे सम्यग्दृष्टि कहें, नहीं! भले ही हमें सारा संसार पागल कह दे, तो भी भीड़ की बात नहीं माननी है। वृद्धों की बात मानो, आयु में वृद्ध नहीं 80, 90, 100 वर्ष के हों दादा जी, परदादा जी, जो पर वस्तु को जोड़ने में लगे हैं, उनकी नहीं, यहाँ पर वृद्ध का तात्पर्य है दृष्टि जिसकी समीचीन है सही है, वह भी ऊपर-ऊपर से नहीं भीतर से भी। बन्धुओ जोड़ना ठीक नहीं, छोड़ना ही ठीक है। मिट्टी में कुछ नहीं रखा।

ऊँची आसन पर बैठकर, करे धर्म की गल्ला।
औरों को माया बुरी बतावे, आप बिछावे पल्ला॥

अरे यह सब पर है, इसमें कुछ नहीं रखा, धर्म की बात मैं कह रहा हूँ, सुनो! यह सारे के सारे संसार के कारण हैं, राग के कारण हैं बन्ध के कारण हैं, दुर्गति देनेवाले हैं, ये पर हैं, स्वभाव अलग है, ये सब विभाव हैं, संसार है, राग करना अभिशाप है, छोड़ दो, छोड़ दो। कहाँ छोड़ दें? हम पल्ला बिछा देते हैं, इसके ऊपर छोड़ दो (श्रोताओं में हँसी)। तो वह सोचेगा कि आप तो कह रहे थे यह रखने योग्य नहीं है और आप पल्ला बिछा रहे हो। ये तो समझ में नहीं आती। बात हमारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पल्ले तो यह पड़ रही है कि वस्तुतः आप हमें उपदेश देकर के इकट्ठे करने में लगे हुए हो, तो उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। यह उल्टा उपदेश देते हैं, हमें छुड़वा देते हैं और खुद ले लेते हैं, लेकिन जिसकी दृष्टि वास्तव में समीचीन हो गई उसका श्रद्धान हो जाता है- पर पदार्थ में सुख नहीं, यदि है तो आत्मद्रव्य में है, सुख को प्राप्त करने का साधन है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आचार्य समन्तभद्र कहते हैं- सही साधन को अपनाओ, तब निराकुल दशा प्राप्त हो सकेगी। यह न्याय का सिद्धान्त है कि जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य होगा। हिंसादिनिवृत्ति रूप जो चारित्र है उस चारित्र को अपनायेंगे तभी राग-द्वेष की प्रणाली मिटनेवाली है, अन्यथा तीन काल में भी सम्भव नहीं। राग-द्वेष जो हो रहे हैं, वे क्यों हो रहे हैं, जिन पदार्थों से हो रहे हैं उन पदार्थों को छोड़ना भी अनिवार्य है, इसी को बोलते हैं बाहरी चारित्र। इस बाहरी चारित्र से ही अन्दर का रागद्वेषनिवृत्ति रूप जो आभ्यन्तर चारित्र है वह होने वाला है। दूसरा मार्ग ही नहीं है। यही सही मार्ग है, मोक्ष प्राप्त होगा तो इसी से ऐसा अटूट श्रद्धान रहता है उसको।

इदम् एव च ईदृशं एव च तत्त्वं नान्यत् न च अन्यथा। इसका उल्टा भी नहीं है, अन्यथा भी नहीं है, ऐसा ही है, इसी प्रकार है, यही है। इस प्रकार का प्रगाढ़ श्रद्धानवाला सम्यग्दर्शन और उस राग-द्वेष को मिटाने के जितने साधन हैं उनमें एक सम्यक् चारित्र भी है जो कि हिंसादिनिवृत्ति रूप होता है। या यूँ कहें कि जिन साधनों से राग-द्वेष की शांति होती है वह है सम्यक्चारित्र। बाहर से कम से कम शांति आये तो बाद में रागद्वेष की प्रणाली जहाँ से उद्भूत हो रही है, वह भी मिटेगी, अन्यथा तीन काल में नहीं।

पाप से बचो

एक बर्तन में दूध तप रहा है, उबल रहा है तो क्या करते हो? अग्नि को बाहर खिसका देते हो। क्या होगा इससे? तपन/क्षोभ/उबलन शांत हो जायेगी। दूध ही क्षुब्ध होनेवाला है, दूध में ही शांति आनेवाली है फिर भी यह स्पष्ट है कि जब तक अग्नि नीचे से तेज रहेगी तब तक दूध में क्षोभ का अभाव नहीं होगा, उष्णता का अभाव नहीं होगा। इसी प्रकार जिन पाप प्रणालियों से रागद्वेषों का विकास हो रहा है तो राग-द्वेष को छोड़ने के लिए पाँच पापों का आलम्बन छोड़ना होगा। महाराज जी हो जायेगी शांति? अरे भाई यह आचार्य समन्तभद्र कह रहे हैं न, जो भगवान् को भी हिलाने की शक्ति रखते थे। भगवान् से भी पूछ डाला क्यों धारण करें? बहुत कुछ कहा तब अन्त में कहा हाँ यह युक्ति भी है और अनुभूत भी। जो रागी-द्वेषी होता है वह पक्षपात की बात कह सकता है। आप रागी, द्वेषी न होने के कारण पक्षपात की बात नहीं कहेंगे सही बात कहेंगे। जब कभी भी रागद्वेष की निवृत्ति होगी, उस समय नियम से वह पापों से निवृत्ति लेगा।

अभी बिजली चली गई तो आप में से कोई नहीं आया बैटरी को बदलने, क्यों? क्योंकि आपने निश्चय कर लिया है कि यह मेरा काम नहीं है, इसके बारे में मुझे ज्ञान नहीं है जिसे ज्ञान है उस मिस्त्री को नियुक्त कर रखा है। वह व्यक्ति तुरन्त आता है, जिसको ज्ञान प्राप्त हो गया है। उसी प्रकार वह व्यक्ति झट से चारित्र लेने के लिए आ जाता है। राग-द्वेष के साधन को मुझे हटाना है और चारित्र को आगे बढ़ाना है। अभी तक ज्ञान था कि आत्मा का हितकारी कोई है तो पंचेन्द्रिय के विषय हैं अब ज्ञात हो गया कि 'आतम के अहित विषय कषाय'। जब जान लिया कि ये अहितकारी हैं तो फिर उनकी ओर देखें क्यों? नहीं। देखें नहीं, मिटाने का प्रयास करें। किसके द्वारा मिट सकते हैं। घर पर मिट सकते हैं? कहाँ पर मिट सकते हैं? इन्हें किस प्रकार मिटा दूँ? आकर के कहता है महाराज! मुझे राग द्वेष मिटाना है। आ जाओ बैठ जाओ और किसी के साथ बोलना नहीं, क्योंकि बोलने से भी राग उत्पन्न होता है। इस प्रकार पाँच पापों से वह जब निवृत्ति लेगा, तो उसका उपयोग राग-द्वेष की ओर नहीं जायेगा।

सम्बन्ध ही दुःख का कारण

आत्मा का उपयोग राग-द्वेष की ओर तब तक जाता है जब तक इष्ट व अनिष्ट पदार्थ रहते हैं। पदार्थों के विमोचन होने के उपरान्त इष्ट रहा, न अनिष्ट। कुछ भी बंध नहीं है। आपकी दुकान के पड़ोस में दो दुकानें और हैं। एक की दुकान में फायदा हो गया, एक की दुकान में हानि हो गई। दोनों की वार्ता को आपने सुना पर आपको कुछ नहीं, होता क्यों? क्योंकि उनके हानि-लाभ से हमारी दुकान का कोई हानि-लाभ नहीं है। आचार्य कहते हैं- इसी प्रकार जिन पदार्थों से जब तक सम्बन्ध रहता है, तब तक उनके वियोग में दुःख व संयोग में सुख प्रतीत होता है, जिन पदार्थों का त्याग कर दिया तो फिर कुछ नहीं, जिस पदार्थ से हमारा सम्बन्ध है, उसी को लेकर हर्ष-विषाद होता है। सम्यग्दृष्टि को ऐसी जागृति हो गई। पदार्थ हमारा हो भी नहीं सकता, तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर क्यों उसके प्रति सम्बन्ध रखना, क्योंकि पर पदार्थ से सम्बन्ध रखना दुःख विकल्प का कारण है।

इस सभा में अभी कोई आकर आवाज दे- सीताराम जी! मान लो सभा में चार सीताराम हैं। आवाज होते ही चारों के कान सतर्क हो जाते हैं, देखते हैं कौन है? किसने आवाज दी? और जैसे ही देखा अमुक व्यक्ति ने आवाज दी, ओह मुनीम जी! तो तीन सीताराम जी की आकुलता समाप्त हो जाती है। क्यों? क्योंकि उनका उन मुनीम जी से कोई सम्बन्ध नहीं है। और जिन सीताराम जी के मुनीम जी हैं उन सीताराम जी को आकुलता परेशानी होती है वह खिसकने लगते हैं। उठ जायें कि नहीं, शास्त्र तो समाप्त हुआ नहीं। मुनीम जी का चेहरा कैसा है, हँस रहे हैं या विषाद/चिन्ता युक्त हैं। पता नहीं क्या हो गया। लगता है बॉम्बे में सौदा हुआ था उसमें गड़बड़ दिखती है। ये सब क्यों? क्योंकि सम्बन्ध है। जिस सीताराम जी का मुनीम जी से सम्बन्ध है, उनके मन में उथल-पुथल है, बाकी के तीन बिल्कुल शांत वीतरागी/निर्विकल्प समाधि जैसे बैठे हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध किसी बाहरी पदार्थ से जुड़ा है। उस पदार्थ के संयोग में, वियोग में, उसके बारे में कुछ वार्ता सुनते हैं, तो नियम से कुछ हर्ष-विषाद होता है और इस हर्ष-विषाद को ही राग-द्वेष कहते हैं। इस राग-द्वेष और हर्ष-विषाद की प्रणाली को यदि मिटाना है, तो पदार्थों से सम्बन्ध को तोड़ना होगा। व्यक्ति सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त जितना-जितना बाहरी पदार्थों से सम्बन्ध तोड़ता है, उतना ही उतना वह अपने निकट पहुँचता चला जाता है और एक समय आता है, जब वह आकिंचन्य रह जाता है, किसी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं रखता वह। कितना पुरुषार्थशील होगा वह, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसकी वृत्ति कितनी निर्मल होगी, कितना साहसी है वह! दुनिया किसी प्रकार सहारा लेने का प्रयास कर रही है, लेकिन वह निराधार, एक मात्र अपनी ही आत्मा का सहारा लेता है। जो कुछ कर्म के अनुसार मिलेगा वह ही मेरे लिए मान्य है और कुछ नहीं। यह मानना साहस का काम है। राग-द्वेष को मिटाने का रास्ता है, तो बस यही एक रास्ता है। अन्धकार मिट गया। सूर्य का प्रकाश आता है, पदार्थ अपने आप प्रकाशित हो जाते हैं। अभी तक अन्धकार में हाथ मार रहे थे जहाँ-तहाँ गिर रहे थे। ज्ञानरूपी प्रकाश आ गया। अपना कौन? पराया कौन? सारा का सारा देखने में आ गया। वह पदार्थ वह रास्ता मेरा नहीं था। सम्यग्दर्शन का अर्थ ही यही है कि इस प्रकार का मजबूत श्रद्धान बनाना कि पर पदार्थ मेरे नहीं हैं। हेय का विमोचन और उपादेय का ग्रहण, इसमें जो सहायक बनता है वही सम्यग्ज्ञान है और इन्द्रियों के विषयों से उपेक्षा होना ही ज्ञान का वास्तविक फल है, जिसे चारित्र कहते हैं। ज्ञान होने के उपरान्त भी उसका विषयों की ओर धावमान होना बह जाना, वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। बस समझ लो- 'ओरों को तो माया बुरी बतावे आप बिछावे पल्ला'। दूसरे के लिये जो बुरी है वह तुम्हारे लिये भी तो बुरी है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि अपनी दृष्टि में बुरी लग नहीं रही है, बस कहता जा रहा है। पंचेन्द्रियों के विषय जब तक जीवन में रुचिकर/अच्छे लग रहे हैं तब तक सम्यग्ज्ञान नहीं है। संसार शरीर भोगों से जब तक उदासीनता नहीं आयेगी, तब तक समझो अभी बात बनी नहीं। संसार की ओर मुड़ना और संसार से मुड़ना बहुत अन्तर है इसमें।

दर्शन मोहनीय की सत्ता/क्षय को जानना हमारे वश की बात नहीं

अब दूसरी बात यहाँ पर है। दर्शनमोह व चारित्र-मोह क्या है? उसे हम आगम से जान रहे हैं। हमें उसका क्षयोपशम हुआ कि नहीं, उसका ज्ञान इस अवस्था में 'न भूतो न भविष्यति'। आगम यह कहता है कि दर्शन-मोहनीय व चारित्रमोहनीय वह कर्म है, जिसको हम इन आँखों से नहीं देख सकते, हाथों से टटोल कर छू नहीं सकते, उसके पास कोई गंध नहीं, जो अपनी नासिका ग्रहण कर ले। छद्मस्थ के लिये, हमारे जैसे जो मंदबुद्धि-वाले हैं क्षायोपशमिक ज्ञान के साथ चलनेवाले उनके लिए वह अमूर्त जैसे हैं। माईक्रोस्कोप में भी दिखनेवाले नहीं, फिर हम कैसे जानें कि हमारे दर्शनमोहनीय का क्षय/उपशम/क्षयोपशम हुआ कि नहीं हुआ? कोई कहे कि जब तक कर्म का उपशमादि नहीं होगा तब तक चारित्र लेना बेकार है, क्योंकि उसमें समीचीनता तभी आ सकती है जब दर्शनमोहनीय का क्षय/उपशम/क्षयोपशम हुआ हो। इसका ज्ञान हो तो चारित्र लें, क्योंकि मिथ्याचारित्र तो हम अंगीकार कर नहीं सकेंगे, महाराज! अरे भाई सम्यक्चारित्र कब धारण करोगे? सम्यक्दर्शन की पहचान आ जाये तब। सम्यक्चारित्र पहिचान में तभी आ सकेगा जब दर्शनमोहनीय की आपको पहिचान हो। वह होती नहीं तो बड़ी उलझन है। आचार्य कहते हैं उलझन तो तुम्हारी है। यह उलझन की बात ही नहीं, रुचि की बात है। दर्शनमोहनीय के क्षय/उपशम/क्षयोपशम के जानने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का थर्मामीटर आप ढूँढना चाहोगे, तो न मिला है, न मिलेगा। यह दिव्यज्ञान का ही विषय है कि किसके पास दर्शनमोहनीय का क्षय/उपशम/क्षयोपशम है? किसके पास उदय है? बाहर से दिखना चाहिए सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति समर्पण का भाव, मार्ग यदि है तो यह है, यही है। प्रतिमा के समाने जाते समय आप यही भाव रखते हैं कि ये ही भगवान् हैं, दूसरे नहीं हो सकते ऊपर-ऊपर से ही नहीं, अन्दर से भी उसी की शरण में जाऊँगा, तो मेरे कर्म की निर्जरा होगी, उसी के ऊपर श्रद्धान करूँगा तो मेरे कर्म की निर्जरा होगी, ऐसे दृढ़भाव सम्यग्दृष्टि के हैं। दूसरे के पास जाने की बात तो दूर, यहाँ आकर भी दूसरे भावों की शरण नहीं है। हे भगवान्! मुझे कर्म निर्जरा करनी है, आप जैसा बनना है, इसके लिए आपकी शरण में आया हूँ व तब तक आपकी शरण लूँगा, जब तक कि आपकी शरण में स्थिर नहीं हो जाऊँगा। यह बाहरी पहिचान सम्यग्दर्शन की है। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य अनुकम्पा ये चार जहाँ हों, वहाँ सम्यग्दर्शन बनता है। हमेशा उदासीन/शाँत रहना और चिन्तन करना कि संसार में क्या रखा है?

समझने के लिए घर में शादी हो रही है, बारात आई खूब धूमधाम चल रही है, शादी हो गई, बारात लौट गई, अब तो मजा नहीं आ रहा है, ऐसा लगता है जैसे भवन खाने को दौड़ रहा है। क्यों? भवन तो वही है, वही रंग रोगन, सब कुछ वही, लेकिन फिर भी अच्छा नहीं लग रहा। जिस प्रकार सब कुछ होते हुए भी वहाँ अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त फिर पंचेन्द्रियविषय अच्छे नहीं लगते। छोड़ो (अपना अपना निवास स्थान) ईसरी चलो, क्यों? अच्छा नहीं लगता क्योंकि मार्ग है तो यही, जीवन में संसारी प्राणी विषयों में सुख मान रहे हैं जबकि वस्तुतः विषयों में सुख है ही नहीं। परद्रव्यों को जो ढूँढ रहे हैं और उनमें सुख मान रहे हैं वे पश्चाताप करेंगे, क्योंकि परिग्रह महापाप माना जाता है। इसका फल जब मिलेगा तब मालूम पड़ेगा। आचार्य कहते हैं-'**बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः,**' बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के माध्यम से नरकायु का आस्रव होता है। नरकों में जाना पड़ता है। अतः सम्यग्दृष्टि सोचता है कि, हे भगवन्! इनको कैसे ज्ञान मिले? इस प्रकार अपायविचय धर्मध्यान करता है। यह दूसरे को देखकर भी हो जाये व अपने को भी देखकर हो जाये। मैं रागद्वेष कब मिटाऊँ इसका अपाय अर्थात् दुःख कब दूर होगा, अभाव कब होगा, सच्चा साधन मैं कब प्राप्त करूँगा, घर में शादी है, वैभव हो तो भी सोचता रहता है, सदैव उदासी छाई रहती है कि ये बाहरी लक्षण हैं। कई लोग कहते हैं महाराज हम चाहते तो नहीं थे फँसना, मगर 2-3 लोगों ने मिलकर फँसा दिया। अच्छा आप कुछ कहकर हमें मत फँसाओ हम जानते हैं ऐसे थोड़े ही फँसाया जाता है, मुनिवत् बैठ जाओ देखें कौन फँसाता है? ऊपर से ना-ना और अन्दर से हाँ-हाँ बस जरा सी अभिव्यक्ति कर दी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने के उपरान्त वह स्वयं विषय कषायों में फँसना नहीं चाहेगा, और उसे कोई फँसा नहीं सकेगा, फँसा भी ले तो कब तक फँसायेगा? एक न एक दिन उठकर बाहर आ ही जायेगा। मैं अपनी आँखों से देख लूँ कि-

दर्शन मोहनीय का क्षय हुआ कि नहीं, इस प्रकार का जीवन में कभी भी प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह सूक्ष्म परणति है जिसे हम इन आँखों से (क्षायोपशमिक ज्ञान से) पकड़ नहीं सकते।

सम्यग्दर्शन होने के उपरान्त वह स्थायी बना रहे यह भी कोई नियम नहीं। दीक्षा ली, एक साथ रत्नत्रय को प्राप्त कर लिया और अन्तर्मुहूर्त के अन्दर नीचे आ गये। कोई पाँचवें, कोई चौथे, कोई प्रथम गुणस्थान में आ गया और जीवनकाल पर्यन्त जो चर्या ग्रहण की थी वह निर्दोष पल रही है। अन्दर घटना बढ़ना होता है, वह जानना तो दिव्यज्ञान का विषय है। इसलिए हमें तो यही ध्यान रखना चाहिये कि राग-द्वेष हमारे लिए अभिशाप हैं और रागद्वेष से अतीत होना ही वरदान है, उसी की शरण लेंगे, उसी का प्रयास करेंगे, उसी की साधना करेंगे, यही बनाये रखो तो भी पर्याप्त है। अतः चारित्र अंगीकार करते समय सम्यग्दर्शन है या नहीं यह शंका नहीं करना चाहिये।

आप चारित्र के लेते समय ऐसी शंका करते हो कि सम्यग्दर्शन है या नहीं है तो हम यह कहते हैं कि आप जो स्वाध्याय करते हो, और यदि सम्यग्दर्शन नहीं है तो स्वाध्याय परम तप कैसे होगा? सम्यग्दर्शन होगा तभी तो स्वाध्याय परम तप है और तप भी इसे मुनियों की अपेक्षा से कहा है। आपका भी है, लेकिन आपका षट्कर्म है। और आपका भी षट्कर्म तब बन सकता है, जब आपने मूलगुण धारण कर लिये हों। और षट्कर्म तो पंच अणुव्रत की सुरक्षा के लिये हैं। पाँच अणुव्रत तो आपने लिये नहीं, तो षट्कर्मों का यह स्वाध्याय आपका षट्कर्म भी नहीं माना जायेगा। और षट्कर्म नहीं माना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायेगा, तो इससे असंख्यात गुणी निर्जरा होगी कैसे? तप होगा कैसे? अर्थात् यदि सम्यग्दर्शन का पता नहीं है, तो स्वाध्याय भी सम्यग्ज्ञान की कोटि में नहीं आ सकेगा। यदि एक तरफ शंका करते हो (चारित्र के क्षेत्र में), तो दूसरी तरफ भी तो (ज्ञान के क्षेत्र में) शंका हो जायेगी और यदि जीवन भर ऐसा निर्णय नहीं हुआ तो फिर? जीवन भर पढ़ते-पढ़ते निकल गया कोई रिजल्ट ही नहीं आ रहा है और हम पढ़ते जा रहे हैं पढ़ते जा रहे हैं। यह तो समझ में नहीं आ रहा कि ऐसी कौन सी कक्षा है एक साल की, दो साल की, तीन साल की है या जीवन भर की है? इस जीवन में कोई कक्षा बदलेगी या नहीं? हमारी समझ में नहीं आता कि जीवन पर्यन्त एक ही कक्षा में रहें। अर्थ यह है कि अपनी बुद्धि जहाँ तक पहुँचती है वहाँ तक पर्याप्त है जो अपनी बुद्धि गम्य पहिचान के लिए प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य है। यही तत्त्व है, यही सम्यक्चारित्र है। इसके अलावा अन्य लौकिक क्रियाओं को जो चारित्र कहते हैं, वह सम्यक्चारित्र नहीं है। सम्यक्चारित्र तो वही है जो राग-द्वेष को मिटाने का साधन है, पंच पापों से निवृत्ति रूप ही चारित्र है। इस प्रशमादि चार लक्षणों को लेकर ही सम्यग्दर्शन की पहिचान, हम बाहर से कर सकते हैं। भीतरी पहिचान तो जिसने कर्म को जाना है, कर्म के क्षयोपशम के बारे में जानने की क्षमता है, ऐसे जो (अवधि/मन:पर्यय/केवलज्ञान का धारी है) वही जान सकता है इसके अलावा अन्य किसी को सम्भव ही नहीं, ऐसा स्पष्ट आगम का उल्लेख है। इतना ही सोच लेना चाहिए ज्यादा नहीं, यदि हम ज्यादा शंका करेंगे तो हमारी मति विभ्रम में पड़ जायेगी और दूसरों की मति को भी विभ्रम में डाल देंगे।

यह अर्थ समझ लेना चाहिए कि चारित्र राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए लिया जा रहा है। इसी चारित्र की शरण में हमको जाना है, चारित्र लेना है। जीवन का लक्ष्य ही यही होना चाहिए कि चारित्र लेना है। राग-द्वेष को मिटाने के लिए। राग-द्वेष को मिटाने के लिए जिन पदार्थों को लेकर के राग-द्वेष उत्पन्न हो रहे हैं, उन पदार्थों से मन, वचन, काय से कृत-कारित-अनुमोदना से जब तक सहर्ष त्याग नहीं होगा, ध्यान रखिये तब तक रागद्वेष के मिटने का कोई सवाल ही नहीं। यह औषधि है, रोग मिटाने के लिए, राग-द्वेष मिटाने के लिये चारित्र लेना ही औषधि है। राग-द्वेष तब तक नहीं मिटेंगे जब तक आप अपने में लीन नहीं होंगे। मन बाहर लीन हो रहा है, क्यों? क्योंकि बाहर मन रखा है, माया रख रखी है, माया से कहो तुम हमारी नहीं और इसके लिए मन मानता नहीं। सम्यग्दृष्टि का पुरुषार्थ बहुत बड़ा है। संसारी प्राणी अनन्त काल से पर पदार्थ का सहारा लेकर के आ रहा है, सम्यग्दृष्टि उस पर कुठाराघात कर देता है। अज्ञान दशा में जब जो स्थिति थी, जोड़ लिया, अब ज्ञान उत्पन्न हो गया है, अब कोई आवश्यकता नहीं। दवाई बहुत ढंग से पिलाई जाती है, हाथ पैर पकड़ करके भी, बेहोश करके भी। चारित्र के क्षेत्र में भी ऐसा ही प्रयास करना पड़ेगा। वस्तुत: चारित्र के क्षेत्र में जल्दी पग नहीं उठते, परिश्रम होता है, लेकिन यही परिश्रम एक दिन मंजिल तक पहुँचा देता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को अपनाना ही मनुष्य जीवन की सफलता है। यदि यह नहीं, तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो नारक, तिर्यंच गति में भी होता है। लोग चारित्र को प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन क्षेत्र का, गति का ऐसा सम्बन्ध पड़ चुका होता है कि वहाँ से अन्यत्र नहीं जा सकते, लेकिन आपके साथ ऐसा नहीं है। बहुत गुंजाइश है आपके साथ। विषयों के क्षेत्र में जब आप शक्ति से बाहर कूदने का साहस रखते हो तो, वीतरागता के क्षेत्र में शक्ति के नहीं होते हुये भी कूदना चाहिए। लेकिन लगता है कि लोग क्या कहेंगे? सबसे बड़ी बीमारी चारित्र के क्षेत्र में यही है कि देखो अच्छा! भगत जी आ गये (श्रोता समुदाय में हँसी) थोड़ा अभिषेक पूजन करें, तो लोग यही कहेंगे बड़े भगत हैं, तो वह सहन नहीं होता, लेकिन ऐसा नहीं, कब तक पीछे रहोगे। दुनिया आपको ऐसा कहती है, अत: क्या आप अपना स्वभाव प्राप्त करना छोड़ दोगे? स्वभाव अपनी चीज है, राग-द्वेष नहीं। स्वभाव की ओर जाते समय दुनिया नियम से बहकायेगी। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब मिल चुके हैं, द्रव्य आपका, क्षेत्र श्रेष्ठ सामने दिख रहा है पारसनाथ हिल, अनंतानंतसिद्ध परमेष्ठी का धाम, इससे बढ़कर कौन-सा क्षेत्र? एक मात्र अन्दर की अलार्म घण्टी बजने की देर है और अन्दर का भाव अपने आश्रित है। राग-द्वेष छोड़ना है जीवन में चारित्र का सहारा लेना है।

'महावीर भगवान् की जय'!

'चरण आचरण की ओर' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मपरिणामों की परख

मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी

जीव, पुदग्ल (अजीव), धर्म, अधर्म आकाश और काल, इन छह द्रव्यों में जीव द्रव्य विशेष है। यह परिणाम से युक्त है। इसके परिणाम हवा के समान दोलायमान होते रहते हैं। हवा का कोई भरोसा नहीं रहता कि कब किस दिशा की तरफ मुड़ जाये? इसी तरह जीव के परिणामों का भी कोई ठिकाना नहीं रहता। कब, किस तरफ इनका झुकाव हो जाये, कौन सा परिणाम हो जाये? एक क्षण में ये जीव इतनी अशुभ प्रकृति का बंध कर लेता है कि इस प्रकृति का यदि विश्लेषण किया जाये तो ऐसा लगता है कि ये जीव कभी इससे मुक्त हो पायेगा कि नहीं और एक क्षण के बाद इसके परिणामों को देखते हैं तो इतना विकास का परिणाम होता है कि शायद ऐसा लगता है कि अभी इसको केवलज्ञान होकर मोक्ष हो जायेगा। कितना विचित्र परिणाम है? इसीलिए कहा है-

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तंमतित्तं च, दुपट्ठिय सुपाट्ठिओ॥

अर्थात् आत्मा सुखों और दु:खों का कर्त्ता है तथा उनका अकर्त्ता भी है। शुभ में स्थित आत्मा मित्र है और अशुभ में स्थित आत्मा शत्रु है।

देखने में आता है कि संसार से वैराग्य लेकर के एक मुनि रत्नत्रय के आनंद में डूब गया। कई बार उसने सप्तम गुणस्थान का भी स्पर्श किया। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय को अपने जीवन में धारण कर लिया, लेकिन उपादान यदि थोड़ा सा कमजोर हो जाये तो निमित्त अपना बल, जोर दिखाने के लिए घूमते ही रहते हैं। उपादान एक होता है, निमित्त अनेक हो जाते हैं। अनेक होते हैं, निमित्त। जब भी कोई व्यक्ति किसी के घर में डाका डालता है, एक नहीं अनेक व्यक्ति डालते हैं। मालिक एक होता है, लेकिन उसे लूटनेवाले अनेक होते हैं। कहाँ तक बचे व्यक्ति? कितना ही प्रयास करो। एक निमित्त हो तो बच जाये, निमित्त अनेकों बनते हैं। बुरे निमित्तों की कमी नहीं है और अच्छे निमित्तों की बहुलता नहीं है, अच्छे निमित्त दुर्लभ होते हैं। हजारों लोगों को उपादान जगाने के लिए कोई एकाध अच्छा निमित्त मिलता है, हजारों लोगों में किसी एक को। कितने करोड़ की जनता है विश्व के अंदर? सात अरब की जनता है। सात अरब में कितने जीव ऐसे हैं जिनके परिणाम सत् होते हैं? कितने जीव ऐसे हैं जो सत् मार्ग पर चलने के लिए निस्वार्थ बुद्धि से प्रेरणा देते हों? सत् मार्ग की एक स्वार्थ बुद्धि से प्रेरणा देना और एक नि:स्वार्थ बुद्धि से प्रेरणा देना, दोनों में अंतर है। जीव की स्वरूपगत विशेषताओं के विषय में 'प्रवचनसार' में आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा है-

अरसमरुवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाणअलिंगग्गहणं जीवमणिदिट्ठ-संठाणं॥

अर्थात् जीव को रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, स्पर्शरहित, शब्दरहित, किसी चिन्ह के द्वारा ग्रहण न करने योग्य तथा आकाररहित जानो।

एक पिता अपने बेटे से कहता है कि बेटे! चोरी मत करना, जुआ मत खेलना, शराब मत पीना। वह सन्मार्गी होकर के भी सन्मार्ग दिखाने की उसकी जो परिणति है, वह जो उसका स्वार्थ है कि ये मेरा बेटा है, शराब पियेगा तो मेरा कुल नष्ट हो जायेगा, शराब पियेगा तो मेरे परिवार में अशांति हो जायेगी, शराब पियेगा तो ये मरण को प्राप्त हो जायेगा, शराब पियेगा तो बुढ़ापे में मेरी कौन सेवा करेगा? ये अनेक स्वार्थ उसके अंदर पनपे हुए हैं, तब कहीं वह बेटे को सुधरने का मार्ग बता रहा है। दूसरे के बेटे यही कर्म करते हैं, तो उसके अंदर इस तरह का परिणाम नहीं आता, लेकिन कुछ ऐसे निमित्त होते हैं, जिन्हें आप लोगों की भाषा में गुरु कहा जाता है। जिनके अंदर कोई परिणाम नहीं कि तुम सुधरोगे तो भी मुझे कुछ मिलने वाला नहीं और तुम बिगड़ोगे तो भी मुझे कुछ मिलने वाला नहीं।

जयपुर वाले शराब पियें या न पियें, पीते भी हों तो मेरे लिए इससे क्या फर्क पड़ेगा, ये तो बता दो? तुम्हारी शराब का नशा मुझ पर नहीं चढ़ेगा। मेरी साधना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। मेरी साध्यता के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। लेकिन उसके बावजूद भी मार्ग दिखाने का परिणाम आता है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी को आया, अरहंत भगवंतों को आया। इसलिए समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि ऐसा निर्देशक मिलना बहुत कठिन है, ऐसा मार्गद्रष्टा मिलना बहुत कठिन है। ऐसा भगवान् मिलना बहुत कठिन है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो नि:स्वार्थ उपदेश देता है। आत्मा की अवस्था को निस्संग माननेवाले हमारे आचार्य संयोग के स्वरूप को बताकर आत्महित और विशुद्ध आत्मा की प्राप्ति के विषय में प्रेरित करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने लिखा है-

एगो मे सासदो आदा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा में बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

अर्थात् जब हम तत्त्वदृष्टि से विचार करते हैं, तो ज्ञात होता है कि मेरी आत्मा अकेली है, ज्ञान-दर्शन उसके लक्षण हैं। शेष जितने भी पदार्थ हैं वे मुझसे भिन्न हैं, बाहर हैं। यह सभी संयोग के कारण प्राप्त हुए हैं। अर्थात् बाह्य पदार्थों से इस आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है।

जैसे कोई भी व्यक्ति ढोलक उठाये, उस पर हाथ मारे, तो उससे आवाज आयेगी। वह यह नहीं देखेगा कि इस ढोलक का मालिक कौन है? जितने भी संगीत के यंत्र होते हैं ढोलक आदि, वे यह नहीं देखते कि मेरा कौन मालिक है? मुझे कौन खरीदकर लाया है? ढोलक कहता है कि जो कलाकार मेरे ऊपर हाथ मारेगा, मैं उसे ही संगीत दूँगा। ढोलक किसका है, बजा कौन रहा है, इससे उसे कोई मतलब नहीं। जो कलाकार हाथ उठायेगा मैं उसे ही संगीत दूँगा। इसी प्रकार से देव, शास्त्र, गुरु हैं कि जो भव्य जीव अपना कल्याण करना चाहता है, वे उनका साथ देते हैं। जो ढोलक बजाता है, ढोलक से संगीत की लहर उसके कानों में आये बिना रह नहीं सकती।

आप समझते हैं कि महाराज मेरे ही हैं। नहीं बन्धुओ! न जाने कौन व्यक्ति इन शब्दों को सुनकर के अपना कल्याण कर लेता है, कौन कर लेता है अपना हित साधन, कहा नहीं जा सकता। किसके शब्द किसके कान में जायें और कल्याण हो जाये, कहा नहीं जा सकता, लेकिन शब्द सुनानेवाला नि:स्वार्थ होना चाहिए। बहुत दुर्लभता से अच्छे शब्द सुनानेवाले मिलते हैं। सारी दुनिया में कल्याणकारक बहुत हैं, लेकिन वें हमें मिल जायें, यह सौभाग्य है। आत्मानुशासन में कहा है- खद्योतवत्। खद्योत बोलते हैं जुगनू को। जैसे वर्षा के समय में जुगनू थोड़े बहुत कही दिख जाते हैं, ऐसे ही कभी, क्वचित्, कदाचित् वे साधु हमें दिख जाते हैं, जो हित की बात करते हैं। और दिखने के बाद वही हमारी आत्मा में ग्रहण हो जाये, तो बहुत बड़ी बात है। बहुत बड़ा विचारणीय प्रसंग है ये, लेकिन फिर भी हमारी जिन्दगी को बिगाड़ने वाले हजारों निमित्त मिलते हैं। जिन्दगी को सुधारनेवाला एक निमित्त मिला। आप अपनी जिन्दगी के आधार पर देख लो।

आपकी जिन्दगी में क्रोध पैदा करनेवाले कितने निमित्त मिले होंगे? मान करनेवाले कितने निमित्त मिले होंगे? लोभ करनेवाले कितने निमित्त मिले होंगे? तुम्हारे जीवन के संबंध में बुरा विचारनेवाले कितने निमित्त मिले होंगे? तुम्हारे जीवन का विनाश करनेवाले कितने निमित्त मिले होंगे?

आचार्य कहते हैं कि अनंतानंत निमित्त मिले होंगे। जो अपनी जिन्दगी को मिटाने वाले हैं, उनसे बचना बहुत कठिन है और जो जीव बच जाता है, वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है। एक उपादान को बड़ी मुश्किल से सँभाला है बड़ी मुश्किल से भव-भव के पुण्य का संचय किया है, तब कहीं रत्नत्रय धारण करने का परिणाम होता है। ऐसे दिगम्बर मुनियों को प्रणाम किया गया है, जिन्होंने यह रत्नत्रय धारण किया है।

प्रेषक-डॉ० सुरेन्द्र जैन 'भारती'

अहिंसा का आयतन

किसी सज्जन ने आचार्य गुरुदेव से कहा साधुओं को गौशाला खुलवाने की प्रेरणा नहीं देना चाहिए उसमें हिंसा होती है। उन्हें तो आत्मध्यान करना चाहिए। यह सुनकर आचार्य श्री ने कहा गौशाला में हिंसा नहीं होती, साक्षात् दया पलती है, करुणा के दर्शन होते हैं, गौशाला भी आयतन हैं, "अहिंसा का आयतन"। सम्यग्दर्शन में अनुकम्पा गुण कहा है वह गौशाला में पशुओं के संरक्षण से प्रयोग में आता है यह सक्रिय सम्यग्दर्शन माना जाता है। बच्चों को पालना मोह है, किन्तु पशुओं को पालना दया अनुकम्पा है।

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिखरजी की यात्रा और बाई जी (धर्ममाता चिरौंजाबाई जी) का व्रतग्रहण

क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

प्रात: काल का समय था। माघ मास में कटरा बाजार के मंदिर में आनन्द से पूजन हो रहा था। सब लोग प्रसन्नचित्त थे। सबके मुख से श्री गिरिराज की वन्दना के वचन निकल रहे थे। हमारा चित्त भी भीतर से गिरिराज की वन्दना के लिये उमंग करने लगा और यह विचार हुआ कि गिरिराज की वन्दना को अवश्य जाना। मंदिर से धर्मशाला में आए और भोजन शीघ्रता से करने लगे। भोजन करने के अनन्तर श्रीबाई जी ने कहा कि 'इतनी शीघ्रता क्यों? भोजन में शीघ्रता करना अच्छा नहीं।' मैंने कहा–'बाई जी! कल कटरा से पच्चीस मनुष्य श्री गिरिराज जी जा रहे हैं। मेरा भी मन श्रीगिरिराज जी की यात्रा के लिये व्यग्र हो रहा है।' बाई जी ने कहा– 'व्यग्रता की आवश्यकता नहीं, हम भी चलेंगे। मुलाबाई भी चलेगी।'

दूसरे दिन हम सब यात्रा के लिये स्टेशन से गया का टिकट लेकर चल दिये। सागर से कटनी पहुँचे और यहाँ से डाकगाड़ी में बैठकर प्रात:काल गया पहुँच गये। वहाँ श्रीजानकीदास कन्हैयालाल के यहाँ भोजनकर दो बजे की गाड़ी में बैठकर शाम को श्रीपार्श्वनाथ स्टेशन पर पहुँच गये और गिरिराज के दूर से ही दर्शन कर धर्मशाला में ठहर गये। प्रात: काल श्रीपार्श्वप्रभु की पूजाकर मध्याह्न बाद मोटर में बैठकर श्रीतेरापन्थी कोठी में जा पहुँचे।

यहाँ पर श्री पं० पन्नालाल जी मैनेजर ने सब प्रकार की सुविधा कर दी। आप ही ऐसे मैनेजर तेरापन्थी कोठी को मिले कि जिनके द्वारा वह स्वर्ग बन गई। विशाल सरस्वती भवन तथा मंदिरों की सुन्दरता देख चित्त प्रसन्न हो जाता है। श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा तो चित्त को शान्त करने में अद्वितीय निमित्त है। यद्यपि उपादान में कार्य होता है, परन्तु निमित्त भी कोई वस्तु है। मोक्ष का कारण रत्नत्रय की पूर्णता है, परन्तु कर्मभूमि, चरम शरीर आदि भी सहकारी कारण है।

सायंकाल का समय था। हम सब लोग कोठी के बाहर चबूतरा पर गये। वहीं पर सामायिकादि क्रिया कर तत्त्वचर्चा करने लगे! जिस क्षेत्र से अनन्तानन्त चौबीसी मोक्ष प्राप्तकर चुकी, वहाँ की पृथिवी का स्पर्श पुण्यात्मा जीव को ही प्राप्त हो सकता है। रह-रह कर यही भाव होता था कि हे प्रभो! कब ऐसा सुअवसर आवे कि हम लोग भी दैगम्बरी दीक्षा का अवलम्बनकर इस दु:खमय जगत् से मुक्त हों।

बाई जी का स्वास्थ्य श्वास रोग से व्यथित था, अत: उन्होंने कहा– 'भैया आज ही यात्रा के लिये चलना है, इसलिए यहाँ से जल्दी स्थान पर चलो और मार्ग का जो परिश्रम है उसे दूर करने के लिये शीघ्र आराम से सो जाओ। पश्चात् तीन बजे रात्रि से यात्रा के लिये चलेंगे।' आज्ञा प्रमाण स्थान पर आये और सो गये। दो बजे निद्रा भंग हुई। पश्चात् शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर एक डोली मँगाई। बाई जी को उसमें बैठाकर हम सब श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की जय बोलते हुए गिरिराज की वन्दना के लिये चल पड़े। गन्धर्व नाला पर पहुँचकर सामायिक क्रिया की। वहाँ से चलकर सात बजे श्री कुन्थुनाथ स्वामी की वन्दना की। वहाँ से सब टोकों की यात्रा करते हुए दस बजे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की टोंक पर पहुँच गये। आनन्द से श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और गिरिराज की पूजा की। चित्त प्रसन्नता से भर गया। बाई जी तो आनन्द में इतनी निमग्न हुई कि पुलकित वदन हो उठीं, और गद्गद् स्वर में हमसे कहने लगीं कि– 'भैया! यह हमारी पर्याय तीन माह की है, अत: तुम हमें दूसरी प्रतिमा के व्रत दो।' मैंने कहा– 'बाई जी! मैं तो आपका बालक हूँ, आपने चालीस वर्ष मुझे बालकवत् पुष्ट किया, मेरे साथ आपने जो उपकार किया है उसे आजन्म नहीं विस्मरण कर सकता, आपकी सहायता से ही मुझे दो अक्षरों का बोध हुआ, अथवा बोध होना उतना उपकार नहीं जितना उपकार आपका समागम पाकर कषाय मन्द होने से हुआ है, आपकी शांति से मेरी क्रूरता चली गई और मेरी गणना मनुष्यों में होने लगी। यदि आपका समागम न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती? मैंने द्रव्यसम्बन्धी व्यग्रता का कभी अनुभव नहीं किया, दान देने में मुझे संकोच नहीं हुआ, वस्त्रादिकों के व्यवहार में कभी कृपणता न की, तीर्थयात्रादि करने का पुष्कल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवसर आया...' इत्यादि भूरिशः आपके उपकार मेरे ऊपर हैं। आप जिस निरपेक्षवृत्ति से व्रत को पालती हैं मैं उसे कहने में असमर्थ हूँ। और जब कि मैं आपको गुरु मानता हूँ तब आपको व्रत दूँ यह कैसे सम्भव हो सकता है? बाई जी ने कहा- 'बेटा! मैंने जो तुम्हारा पोषण किया है वह केवल मेरे मोह का कार्य है। फिर भी मेरा यह भाव था कि तुझे साक्षर देखूँ। तूने पढ़ने में परिश्रम नहीं किया। बहुत से कार्य प्रारम्भ कर दिये। परन्तु उपयोग स्थिर न किया। यदि एक काम का आरम्भ करता, तो बहुत ही यश पाता। परन्तु जो भवितव्य होता है वह दुर्निवार है। तूने सप्तमी प्रतिमा ले ली, यह भी मेरी अनुमति के बिना ले ली, केवल ब्रह्मचर्य पालने से प्रतिमा नहीं हो जाती, १२ व्रतों का निरतिचार पालन भी साथ में करना चाहिए, तुम्हारी शक्ति को मैं जानती हूँ, परन्तु अब क्या? जो किया सो अच्छा किया, अब हम तो तीन मास में चले जावेंगे, तुम आनन्द से व्रत पालना, भोजन का लालच न करना, वेग में आकर त्याग न करना, चरणानुयोग की अवहेलना न करना तथा आय के अनुकूल व्यय करना, अपना द्रव्य त्यागकर पर की आशा न करना, 'जो न काहु का तो दीन कोटि हजार।' दूसरे से लेकर दान करने की पद्धति अच्छी नहीं। सबसे प्रेम रखना, जो तुम्हारा दुश्मन भी हो उसे मित्र समझना, निरन्तर स्वाध्याय करना, आलस्य न करना यथा समय सामायिकादि करना, गल्पवाद के रसिक न बनना, द्रव्य का सदुपयोग इसी में है कि यद्वा तद्वा व्यय नहीं करना, हमारे साथ जैसा क्रोध करते थे वैसा अन्य के साथ न करना, सबका विश्वास न करना, शास्त्रों की विनय करना, चाहे लिखित पुस्तक हो, चाहे मुद्रित। उच्च स्थान पर रखकर पढ़ना, जो गजट आवें उन्हें रद्दी में न डालना, यदि उनकी रक्षा न कर सको तो न मँगाना, हाथ की पुस्तकों को सुरक्षित रखना और जो नवीन पुस्तक अपूर्व मुद्रित हो उसे लिखवाकर सरस्वती भवन में रखना।

यह पञ्चमकाल है। कुछ द्रव्य भी निज का रखना। निज का त्याग कर पर की आशा रखना महती लज्जा की बात है। अपना दे देना और पर से माँगने की अभिलाषा करना घोर निन्द्य कार्य है। योग्य पात्रको दान देना। विवेकशून्य दान की कोई महिमा नहीं। लोकप्रतिष्ठा के लिये धार्मिक कार्य करना ज्ञानी जनों का कार्य नहीं। ज्ञानीजन जो कार्य करते हैं, वह अपने परिणामों की जाति को देखकर करते हैं। शास्त्र में यद्यपि मुनि-श्रावक धर्म का पूर्ण विवेचन है, तथापि जो शक्ति अपनी हो उसी के अनुसार त्याग करना। व्याख्यान सुनकर या शास्त्र पढ़कर आवेगवश शक्ति के बाहर त्याग न कर बैठना। गल्पवाद में समय न खोना। प्रकरण के अनुकूल शास्त्र की व्याख्या करना। 'कहीं की ईट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनवा जोड़ा' की कहावत चरितार्थ न करना। श्रोताओं की योग्यता देखकर शास्त्र वाचना। समय की अवहेलना न करना। निश्चय को पुष्ट कर व्यवहार का उच्छेद न करना, क्योंकि यह दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। 'निरपेक्षो नयो मिथ्या' यह आचार्यों का वचन है। यदि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय में परस्पर सापेक्षता नहीं है, तो उनके द्वारा अर्थक्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। इनके सिवाय एक यह बात भी हमारी याद रखना कि जिसकाल में जो काम करो, सब तरफ से उपयोग खींच कर चित्त उसी में लगा दो। जिस समय श्री जिनेन्द्र देवकी पूजा में उपयोग लगा हो, उस समय स्वाध्याय की चिन्ता न करो और स्वाध्याय के काल में पूजन का विकल्प न करो। जो बात न आती हो उसका उत्तर न दो, यही उत्तर दो कि हम नहीं जानते। जिसको तुम समझ गये कि गलत हम कह रहे थे, शीघ्र कह दो कि हम वह बात मिथ्या कह रहे थे। प्रतिष्ठा के लिये उसकी पुष्टि मत करो। जो तत्त्व तुम्हें अभ्रान्त आता है, वह दूसरे से पूछ कर उसे नीचा दिखाने की चेष्टा मत करो। विशेष क्या कहें? जिसमें आत्मा का कल्याण हो वही कार्य करना। भोजन के समय जो थाली में आवे उसे सन्तोषपूर्वक खाओ। कोई विकल्प न करो। व्रत की रक्षा करने के लिये रसना इन्द्रिय पर विजय रखना। विशेष कुछ नहीं।

इतना कहकर बाई जी ने श्रीपार्श्वनाथस्वामी की टोंक पर द्वितीय प्रतिमा के व्रत लिये और यह भी व्रत लिया कि जिस समय मेरी समाधि होगी उस समय एक वस्त्र रखकर सबका त्याग कर दूँगी-क्षुल्लिका वेष में ही प्राण विसर्जन करूँगी। यदि तीन मास जीवित रही तो सर्व परिग्रह का त्याग कर नवमी प्रतिमा का आचरण करूँगी। हे प्रभो पार्श्वनाथ! तेरी निर्वाण भूमिपर प्रतिज्ञा लेती हूँ, इसे आजीवन निर्वाह करूँगी। कितने ही कष्ट क्यों न आवें, सबको सहन करूँगी। औषध का सेवन मैंने आज तक नहीं किया। अब केवल सूखी वनस्पति को छोड़कर अन्य औषध सेवन का त्याग करती हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसे तो मैंने १८ वर्ष की अवस्था से आज तक एक बार भोजन किया है, क्योंकि मेरी १८ वर्ष में वैधव्य अवस्था हो चुकी थी। तभी से मेरे एक बार भोजन का नियम था, अब आपके समक्ष विधिपूर्वक उसका नियम लेती हूँ। मेरी यह अन्तिम यात्रा है। हे प्रभो! आज तक मेरा जीव संसार में रुला। इसका मूलकारण आत्मीय अज्ञान था, परन्तु आज तेरे चरणाम्बुज प्रसाद से मेरा मन स्वपरज्ञान में समर्थ हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं अपनी संसार अटवी को अवश्य पार कर लूँगी। मेरे ऊपर अनन्त संसार का जो भार था, वह आज तेरे प्रसाद से उतर गया।

'मेरी जीवनगाथा'/ भाग १/
पृष्ठ ३९५-४०० से साभार

आपके पत्र

'जिनभाषित' का प्रत्येक अंक मिलते ही उसी दिन पूरा पढ़ लेता हूँ, फिर अगले अंक की लम्बी प्रतीक्षा करना पढ़ती है, पूरे एक माह। क्योंकि मासिक पत्रिका है। लगता है यह सप्ताहिक होती। अपनी रीति-नीति के अनुरूप जैनधर्म-दर्शन-संस्कृति के विविध आयामों का सम्यक् प्रतिनिधित्व कर रही है यह। नवम्बर 07 के अंक में प्रकाशित सभी लेख ज्ञानवर्धक हैं। स्व० डॉ० जगदीशचंद जैन जैसे अन्ताराष्ट्रियख्याति-प्राप्त विद्वान् का 'जर्मनी में जैनधर्म के कुछ अध्येता' नामक लेख हमें जैनधर्म के प्रति विदेशियों के मन में आदर और समर्पण की सूचना देता है। ब्र० पं० अमरचन्द्र जी का आलेख वर्तमान में मंत्र-तंत्रादि के बल पर जरूरत से ज्यादा लोकप्रियता और धनसंग्रह को मुख्य लक्ष्य बनानेवाले मुनियों को ही नहीं, अपितु कुछ विधि-विधान कर्ता /प्रतिष्ठाचार्य विद्वानों को आत्मबोध की ओर आने को बाध्य करनेवाला है। बुंदेली बोली (भाषा) में मालती मड़बैया के आचार्य श्री विद्यासागर जी के बुंदेल खण्ड क्षेत्र के प्रति विशेष लगाव, झुकाव-विषयक आलेख ने तो दिल को छू लिया। बुंदेली के इस प्रथम आलेख को पढ़कर और वह भी आचार्यश्री से सम्बन्धित, उनकी आन्तरिक विशेषताओं को पढ़कर बहुत आनन्द आया। मेरा उन्हें विशेष धन्यवाद। इसी प्यारी-प्यारी बुंदेली में आगे भी लिखते रहने हेतु। अन्य सभी आलेख भी प्रेरणाप्रद हैं।

प्रो० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'
जैन दर्शन विभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नये वर्ष की (2008) हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकारें। शतायु हों। दिसम्बर 07 'जिनभाषित' मेरे सामने है। बहुत रोचक एवं पठनीय लेख इस अंक में समायोजित हैं। जहाँ बोधकथाओं की महक है, वहीं आचार्य श्री के दोहों में शब्द चमत्कार तथा मुनि श्री क्षमासागर जी की कविता में भाव-प्रवणता का सघन अहसास। पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी का व्यक्तित्व जितना सरल और विनम्र, सम्यक्दर्शन पर उनकी लेखनी से प्रसूत सरिता सा सरल प्रवाह। मुनि श्री प्रणम्यसागर जी का दिव्यध्वनि पर दिव्य आलेख शोधपूर्ण तार्किक एवं वैज्ञानिक लगा। मुनि श्री कुंथुसागर जी के लघु संस्मरण पढ़ने में मीठे और शिक्षाप्रद हैं। संत के समत्व का स्फुरण जिनसे प्रगट है। मुनि श्री क्षमासागर की 'चिड़िया' भावाकाश की ऊँचाईयाँ अपने परों से तैय करती चोंच में ही जैनदर्शन के तत्त्व-कण दबाये स्वच्छन्द विहग बनी फुदफुदाती हुई आत्म-स्वातंत्र्य का रूप-बिम्ब। बुन्देलखण्ड का वैभव, (श्री राकेश दत्त त्रिवेदी) जैसे कोई हमारी जन्मभूमि का यशोगान कर रहा हो।

डॉ० सुरेन्द्र भारती को और विस्तारित लिखना चाहिए था, आज के पंचकल्याणकों के अभिनव अभिनय अभिनीत पर। वैसे वे कहना तो बहुत चाहते थे, लेकिन 'जिनभाषित' की अपनी कुछ सीमाएँ हैं।

पं० निहालचन्द्र जैन
जवाहर वार्ड- बीना (म०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ काल के मुनि आचार्य श्री विद्यासागर जी

स्व० पं० कैलाशचंद्र जी शास्त्री

श्रद्धेय पं० कैलाशचंद्र जी शास्त्री 19वीं शताब्दी के महान् जैन विद्वान् थे। वे अपने अंतिम समय तक 'जैनसन्देश' के सम्पादक रहे। 'जैनधर्म' कृति लिखकर उन्होंने महती ख्याति अर्जित की थी। इस सदी के महानतम आचार्य विद्यासागर जी महाराज के दर्शनोपरान्त जो सम्पादकीय उन्होंने 'जैन संदेश' के 10 अक्टूबर 1985 के अंक में लिखा था उसे साभार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

एलाचार्य मुनि विद्यानन्द जी ने अपने भाषण में कहा था कि चतुर्थ काल के मुनि विद्यासागर जी हैं। उनका यह कथन यथार्थ है। रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में समन्तभद्राचार्य ने कहा है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

अर्थ- जो विषयों की आशा के वश के रहित है, आरम्भ और परिग्रह से रहित है तथा ज्ञान ध्यान और तप में लीन रहता है वह साधु प्रशंसनीय है। आचार्य विद्यासागर जी में ये सभी बातें घटित होती हैं। उन्हें किसी भी लौकिक प्रतिष्ठा आदि की चाह नहीं है, वे किसी भी प्रकार का आरम्भ नहीं करते। उनके पास पीछी कमण्डलु के सिवाय कोई परिग्रह नहीं है, न मोटर है और न एक पैसा है। उनके संघ के सब मुनि बाल ब्रह्मचारी युवा हैं। वे अपने संघ के साथ अनियत बिहार करते हैं। वे कब विहार करेंगे और कहाँ जायेंगे, यह कभी भी किसी को मालूम नहीं होता। फिरोजाबाद में हमें मालूम हुआ कि वहाँ उनसे किसी ने प्रश्न किया कि महाराज अतिथि किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि इसका उत्तर कल देंगे। और दूसरे दिन पीछी कमण्डलु लेकर विहार कर गये।

पुराने दिगम्बर जैन साधु तो वनों में रहते थे। आज तो प्रायः नगरों में रहते हैं। मगर आचार्य विद्यासागर जी नगर में निवास न करके प्रायः बाहर में ही निवास करते हैं। जबलपुर में चातुर्मास किया तो नगर में न रहकर मढ़िया जी में रहे। सागर में भी वर्णी भवन में ही रहे। खुरई में तो पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ही उनके संघ का आवास था। आगम में कहा है- जिस घर में गृहस्थों का आवास हो या उनके और साधु के आने जाने का मार्ग एक हो, साधु को वहाँ नहीं रहना चाहिये। जहाँ स्त्रियों का, पशुओं आदि का आना-जाना हो, ऐसे स्थान भी साधु निवास के लिए वर्जित हैं। प्राचीन काल में साधु नगर के बाहर बन गुफा आदि में रहा करते थे।

प्रवचनसार में कहा है। कि आगम में दो प्रकार के मुनि कहे हैं- एक शुभोपयोगी और एक शुद्धोपयोगी। इसकी टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने यह प्रश्न किया है कि मुनिपद धारण करके भी जो कषाय का लेश होने से शुद्धोपयोग की भूमिका पर आरोहण करने में असमर्थ हैं, उन्हें साधु माना जाये या नहीं? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने 'धम्मेण परिणदप्पा' इत्यादि गाथा से स्वयं ही कहा है कि शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थ समवाय है। अतः शुभोपयोगी के भी धर्म का सद्भाव होने से शुभोपयोगी भी साधु होते हैं, किन्तु वे शुद्धोपयोगियों के समकक्ष नहीं होते। आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रमणों की प्रवृत्ति इस प्रकार कही है- शुभोपयोगी मुनि शुद्धात्मा के अनुरागी होते हैं। अतः वे शुद्धात्मयोगी श्रमणों का वन्दन नमस्कार, उनके लिये उठना, उनके पीछे-पीछे जाना, उनकी वैयावृत्य आदि करते हैं। दूसरों के अनुग्रह की भावना से दर्शन ज्ञान के उपदेश में प्रवृत्ति, शिष्यों का ग्रहण, उनका संरक्षण, तथा जिनपूजा के उपदेश में प्रवृत्ति शुभोपयोगी मुनि करते हैं। किन्तु जो शुभोपयोगी मुनि ऐसा करते हुए अपने संयम की विराधना करता है वह गृहस्थधर्म में प्रवेश करने के कारण मुनिपद से च्युत हो जाता है। इसलिए प्रत्येक प्रवृत्ति संयम के अनुकूल ही होना चाहिये, क्योंकि प्रवृत्ति संयम की सिद्धि के लिये ही की जाती है। किन्तु जो निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग को नहीं जानते और पुण्य को ही मोक्ष का कारण मानते हैं, उनके साथ संसर्ग करने से हानि ही होती है। अतः शुभोपयोगी भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु लौकिक जनों के साथ संपर्क से बचते हैं।

आज तो साधुगण शुभोपयोगी ही हैं। आचार्य विद्यासागर जी शुभोपयोगी श्रमणों का कर्त्तव्य पालन करते हैं अतः लौकिक जनों के संपर्क से बचते है। आज के साधु तो प्रायः जिनपूजा के उपदेश में ही प्रवृत्ति न करके जिन पूजा में भी प्रवृत्ति करते हैं।

प्रतिदिन देवदर्शन, देवपूजा, जिन मंदिर व मूर्तियों के निर्माण में श्रावको का कर्त्तव्य श्रावकाचार में कहा है, किन्तु आज तो वह सब साधुगण भी करते हैं। उनका उपयोग आत्मोन्मुख न होकर वहिर्मुखी होता है।

किन्तु आचार्य विद्यासागर जी पूजा-पाठ के प्रपंच में नहीं हैं। वे तो अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं, स्वयं पढ़ते हैं और श्रावकों को दर्शन और ज्ञान का सदुपदेश देते हैं।

उन्हें पं० सुमेर चन्द्र जी दिवाकर ने लिखा था 'आपके द्वारा जैन-अजैनों में धर्म की प्रभावना हो रही है। लोग पूछते हैं- ''आचार्य शांतिसागर जी महाराज बाहर जाते समय अपना प्रोग्राम कह दिया करते थे। उनके संघ में चलनेवाले श्रावक समूह जिनप्रतिमा को लेकर चलते थे। जिससे मुनिजन और गृहस्थ दोनों स्वकल्याण करते थे। लोग आपसे सविनय यह जानना चाहते हैं कि आप बिना बताये विहार कर जाते हैं। क्या बता देने से महाव्रत में क्षति होगी?''

महाराज ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, क्योंकि प्रोग्राम बताकर, श्रावक प्रतिमा लेकर साथ में चले यह तो इसी युग की प्रवृत्ति है। आज मुनिगण स्वयं अपने साथ मूर्तियाँ रखते हैं, जबकि आगम में इस तरह का कोई उल्लेख नहीं है। मुनि स्वयं आत्मस्वरूप के ज्ञाता-दृष्टा होते है तथा आत्मस्वरूप को जानने के लिए ही श्रावक देव दर्शन करते हैं। जब साधुगण जंगलों में रह कर विहार करते थे, तब यह सब प्रवृत्ति नहीं थी। आज तो साधुगण मात्र शरीर से नग्न होते हैं, किन्तु उनके अन्तरंग में अपनी पूजा-प्रतिष्ठा की भावना रहती है। आचार्य विद्यासागर जी में ऐसी भावना नहीं है, इसी से वे चतुर्थकाल के मुनि-तुल्य हैं।

प्रस्तुति- डॉ० श्रीमती ज्योति जैन, खतौली
सह सम्पादिका - 'जैन सन्देश'

समाधिमरण-पूर्वक देहत्याग

हिम्मतनगर (गुजरात) निवासी धर्मप्रेमी श्री सुरेश गाँधी की पूजनीय माताश्री ब्र० चम्पावेन भजीलाल गाँधी ने दिनांक 29.10.07 को प्रभुस्मरण करते हुये देहत्याग कर दिया। आप सप्तम प्रतिमाधारी विदुषी महिला थीं। कई वर्षों से आप साधना में लगी हुई थीं। प्रभु से कामना है कि आपको सद्गति प्राप्त हो।

विद्यासागर तपोवन, तारंगाजी में शिविर सम्पन्न हुआ

परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी एवं मुनिपुंगव श्री १०८ सुधासागर जी महाराज के आशीर्वाद से, तपोवन ट्रस्ट के सक्रिय सहयोग से डॉ० नेमिचंद जी जैन खुरई के मार्गदर्शन में, सर्वोदय आध्यात्मिक जैन धार्मिक शिक्षण शिविर दिनांक २१.१२.०७ से ३१.१२.०७ तक सम्पन्न हुआ।

शिविर में शिक्षण में सहयोग सांगानेर (जयपुर, राजस्थान) के आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागर छात्रावास के छात्र पंडित भरत जी, पंडित वैभव जी शास्त्री एवं तपोवन के ही बाल ब्र० पंडित चेतन जी ने दिया। बाल ब्र० सुनील जी ने शिविर के लिये उचित साधनों के जुटाने में सहयोग किया। ४७ भाइयों एवं बहनों ने जैनधर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ छहढाला, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन किया। परीक्षा के बाद प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों को विशेष पुरस्कार एवं सभी को प्रोत्साहन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

केसरीभाई परिख
विद्यासागर तपोवन, तारंगाजी,

श्री विमलचन्द्र जी गोधा का निधन

दिल्ली निवासी श्री विमलचन्द्र जी गोधा ने 76 वर्ष की आयु में शान्त-निराकुल परिणामों सहित सर्व सम्पन्न परिवार जनों से निर्मोही हो, इस मनुष्यपर्याय को सार्थक करते हुये 30 नवम्बर, 2007 को दोपहर 2:30 बजे शरीर का परित्याग किया।

आप तीर्थ क्षेत्रों, सस्थाओं एवं मन्दिरों के उत्थान हेतु बिना पद एवं नाम की आकांक्षा के, उदारभाव से जीवन भर कार्य करते रहे। आप परम मुनिभक्त थे। जिनभाषित परिवार शोकसन्तप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द और उनका जन्मस्थान

मूल लेखक : श्री पी०बी० देसाई
अनुवादक : डॉ० कन्हैयालाल अग्रवाल

दिगम्बरपरम्परा में आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, यह इसी से पता चल सकता है कि **'मंगलं भगवान् वीरो .....'** वाले मंगलाचरण में भगवान् महावीर और गौतमगणधर के बाद मंगलरूप में उनका स्मरण-वन्दन किया जाता है। आज भी उनका विस्तृत इतिहास अज्ञात ही है। कुछ वर्षों पूर्व तक तो हमें उनके जन्मस्थान का भी निश्चित पता नहीं था। अपने महान् उपकारी आचार्यों के प्रति हम कितने अकृतज्ञ एवं असंवेदनशील हैं, यह इससे प्रकट है। उन्हीं भगवान् कुन्दकुन्द के जन्मस्थान आदि के संबंध में प्रामाणिक जानकारी आपको विद्वान् लेखक की इस रचना में मिलेगी।

सामान्य रूप में जैनधर्म और प्रमुख रूप में दक्षिण भारतीय जैनधर्म महान् आचार्य कोण्डकुन्दाचार्य का अत्यधिक ऋणी है, जिन्होंने अपने विशाल व्यक्तित्व से उसके विकास में बहुत अधिक योगदान दिया। आध्यात्मिक ख्याति-प्राप्त, एक नई वैहारिक व्यवस्था के श्रेष्ठ संघ-टनकर्ता और इन सबसे अधिक जैन आगमों पर उत्कृष्ट टीकाओं के सुप्रसिद्ध लेखक, उन्होंने सम्पूर्ण जैनधर्म और दर्शन के क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों की अमिट छाप छोड़ी है।

दुर्भाग्य से उनके जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी है, लेकिन उनके सम्बन्ध में जो थोड़ी बहुत जानकारी है भी, वह आख्यानों और अनुमानों के रूप में है। यहाँ तक कि उनके नाम या नामों का स्वरूप और प्रकार भी विभिन्न कल्पनाओं पर आधारित है। ऐसी स्थिति में राजाराम महाविद्यालय, कोल्हापुर के डॉ० ए० एन० उपाध्ये[2] ने सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री को एकत्र करने और इस आचार्य के जीवन सम्बन्धी पक्ष को भलीभाँति समझने के लिये मार्ग प्रशस्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है। मैंने अपने ग्रन्थ 'दक्षिण भारत में जैनधर्म' के लिये पुरातात्त्विक और आभिलेखिक स्रोतों का अध्ययन करते समय कोण्डकुन्दाचार्य से सम्बन्धित अनेक सन्तोष-जनक तथ्यों का अवलोकन किया है। विषय की प्रथम श्रेणी की सामग्री संकलित करने के विचार से मैंने इस आचार्य से सम्बन्धित एक स्थान का भ्रमण किया और सेतु-स्थित पुरावशेषों का परीक्षण किया। इस व्यक्तिगत छानबीन के कारण अब मैं ऐसी स्थिति में हूँ कि कोण्डकुन्दाचार्य और विशेष रूप से उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाल सकूँ।

आचार्य का वास्तविक नाम पद्मनन्दी था और ऐसा प्रतीत होता है कि अपने निवासस्थान के कारण उन्होंने कोण्डकुन्दाचार्य का लोकप्रिय विरुद धारण कर लिया था। इस सूचना का स्पष्ट संकेत इन्द्रनन्दी के श्रुतावतार में मिलता है। इस लेखक के अनुसार आचार्य का निवास स्थान कुन्दकुन्दपुर में था।[3] इस तथ्य की पुष्टि आभिलेखिक साक्ष्यों से होती है। 1133 ई० के मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) के हासन जिला स्थित बस्तिहल्ली अभिलेख[4] प्रख्यात मुनि कोण्डकुन्द के चतुर्दिक् यश का उल्लेख करता है, जो शान्ति की भावना का मानों उद्गम स्थान था और कोण्डकुन्दे से आया था और चारणों से वन्दित था। मल्लिषेण के श्रवणबेलगोल अभिलेख[5] में इस आचार्य का उल्लेख कोण्डकुन्द के रूप में किया गया है, जिससे संकेत मिलता है कि उसकी उत्पत्ति कोण्डकुन्द या कुण्डकुन्द से हुई। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, कोण्डकुन्द (कुन्दे) स्थान का मूल नाम है। कालान्तर में उसका संस्कृत निष्ठ रूप कुन्दकुन्द हो गया।

आज भी, आंध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिलान्तर्गत गूटी तालुका में एक गाँव ऐसा है जो इस नाम की समस्या को हल कर देता है। पहले यह क्षेत्र कर्नाटक प्रदेश का अंग था। आंध्रों के प्रभाव में आने पर आजकल यह गाँव कोनकोण्डला कहलाता है। लेकिन इसका सही नाम कोण्डकुन्दी है। स्थान नाम का यह रूप आज भी स्थानीय जनता और बोलचाल की भाषा में प्रचलित है। जैसा कि इस ग्राम से 1071 ई० के एक आद्य अभिलेख[6] से, जिसमें उसका नाम कोण्डकुन्दे बताया गया है, विदित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है कि यही इस स्थान का मूल नाम होना चाहिए। इस सन्दर्भ में एक स्थानीय परम्परा को भी ध्यान में रखना उपयुक्त होगा, जिससे यह प्रमाणित होता है कि यह ग्राम कोण्डकुन्दाचार्य का निवास स्थान था।[7] लगभग दो हजार सालों से इन क्षेत्रों में प्रचलित परम्परा से न केवल यह विश्वसनीय रूप से प्रमाणित हो जाता है, अपितु यह यहाँ उद्धृत अन्य साक्ष्यों को भी पुष्ट करता है।

संयोग से आचार्य के निवास स्थान का पता मिल जाने पर अब हम स्वयं उक्त स्थान पर ध्यान देंगे और वहाँ के प्राचीन अवशेषों[8] का विश्लेषण करेंगे, जिसमें जिनमूर्तियाँ और जैन अभिलेख सम्मिलित हैं। कोण्ड-कोण्डला या कोण्डकुन्दी ग्राम के बहुसंख्यक जैन पुरावशेष रसा-सिद्धुल गुट्ट नामक पहाड़ी पर ढूँढे जा सकते हैं, जो ग्राम के उत्तर में दो फर्लांग की दूरी पर स्थित है। रसासिद्धुल गुट्ट, जो एक तामिल नाम है, उसका अर्थ है रसासिद्ध की पहाड़ी और प्रतीत होता है कि इस नाम ने अलौकिक महत्त्व प्राप्त कर लिया। इस पहाड़ी की चोटी पर एक जिनालय है, जिसके तीनों ओर की दीवारें पहाड़ी काटकर बनायी गयी हैं, जिस पर छत नहीं है। इस जिनालय में तीर्थंकरों की दो खड्गासन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित है, जिनके साथ तिहरे छत्र और सेवा में शासन देवता हैं। मूर्तियाँ लाल ग्रेनाइट की बनी हैं और लगभग दो फुट छः इंच ऊँची हैं। समान्य रूप से उन्हें 13वीं शती ई० का कहा जा सकता है। लोक-विश्वास के अनुसार ये प्रतिमाएँ रससिद्ध या अलौकिक मुनियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें रससिद्धि के रहस्य ज्ञात थे। इस जिनालय के पीछे एक चट्टान पर कमल पर खड़ी एक बड़ी जिन-प्रतिमा बनी है। समीपवर्ती एक अन्य चट्टान पर एक वर्त्तुलाकर यन्त्र की रेखाकृति उत्कीर्ण है, जिसमें अलौकिक महत्त्व सन्निहित है।

उक्त जिनालय से थोड़ी ही दूर के शिलाखण्डों के चट्टानी पार्श्वों पर अनेक अभिलेख उत्कीर्ण हैं। उनमें से कुछ सातवीं शती के अपरिष्कृत अक्षरों से युक्त हैं और अन्य दसवीं और ग्यारहवीं शती के हैं। इनमें से अनेक में जैन आचार्यों के नाम लिखे हैं, उनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जायेगा। प्रथम वर्ग के एक लेख में 'सिंगनन्दि द्वारा सम्मानित' का वर्णन है। निश्चितरूप से यह सम्मानित व्यक्ति इस अभिलेख के लेखक सिंगनन्दि का गुरु होना चाहिये। प्रायः दसवीं शती का एक अन्य अभिलेख[10] निषधि-स्मारक है, जो आचार्य नागसेन देव के सम्मान में उत्कीर्ण किया गया।

विभिन्न स्थानों से प्राप्त दो अन्य अभिलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से पहला कैलासप्प गुट्ट[11] नामक एक दूसरी पहाड़ी के एक शिलाफलक पर उत्कीर्ण है। इनमें से चट्ट जिनालय नामक मंदिर को प्रदत्त भूमि और अन्य वस्तुओं के दिये जाने का उल्लेख है। इस मंदिर का निर्माण नालिकब्बे नामक महिला द्वारा अपने स्वर्गीय पति की स्मृति में कोण्डकुन्देय तीर्थ में कराया गया था। उक्त दान महामण्डलेश्वर जोयिमय्यरस द्वारा जो पश्चिमी चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के राज्यकाल में १०८१ ई० में सिंगवाड़ी क्षेत्र पर शासन कर रहा था, दिया गया। इस अभिलेख से दो महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है, पहली यह कि इस स्थान का नाम कोण्डकुन्दे था[12] और दूसरी यह कि यह एक तीर्थक्षेत्र या जैनों द्वारा मान्य धार्मिक क्षेत्र था।

दूसरा अभिलेख[13] उसी गाँव के आदिचन्न केशव मंदिर के अग्रभाग पर स्थापित शिलाफलक पर उत्कीर्ण है। दुर्भाग्य से यह अभिलेख क्षतिग्रस्त हो गया और कहीं कहीं कट गया है। इसलिये इसका सम्पूर्ण वर्ण्य विषय हमें प्राप्त नहीं है। यह एक जैन अभिलेख है। जिनशासन की परिचित शैली से प्रारम्भ होकर यह अभिलेख इस स्थान की प्रसिद्धि का वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में करता है। जैसा कि अभिलेख से विदित होता है यह स्थान महान् आचार्य पद्मनन्दि भट्टारक का जन्म स्थान होने के कारण संसार में विख्यात था। उन्होंने अनेकान्त सिद्धान्त से, जो भवसागर पार करने का वास्तविक जहाज है, सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया था। वर्णन में पद्मनन्दि का नाम दो बार और चरणों का अस्पष्ट संकेत मिलता है जो महत्त्वपूर्ण है। यहाँ हम उपरिवर्णित बस्तिहल्ली का वर्णन स्मरण कराना चाहेंगे। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं पद्मनन्दि कोण्डकुदाचार्य का नाम था और कुछ अभिलेखों में चारणों से आचार्य को सम्बन्धित करते हुए उल्लेख किया गया है।[14] इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत अभिलेख के पद्मनन्दि का तादात्म्य कोण्डकुन्दाचार्य से स्थापित करने में हम उचित मार्ग पर हैं। पुनः अभिलेख कोण्डकुन्द अन्वय का उल्लेख करता है। यह अभिलेख स्वतः पश्चिमी चालुक्य नरेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमादित्य षष्ठ के शासन का उल्लेख करता है जिसने 1076 ई० से 1126 ई० तक शासन किया। लेकिन अभिलेख का वह भाग जिसमें वास्तविक तिथि अंकित थी, नष्ट हो गया है। तो भी, हम इसे लगभग 11वीं शती के अन्त का मान सकते हैं।

इस अभिलेख का महत्व त्रिकोणीय है। पहला वह इस कथन के समर्थन में आभिलेखिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि पद्मनन्दि कोण्डकुन्दाचार्य का दूसरा नाम था। दूसरा, यह साक्ष्य प्राचीनतम है, क्योंकि कोण्डकुन्दाचार्य के प्रथम टीकाकार जयसेन, जिन्होंने पद्मनन्दि के साथ उनकी पहली बार पहचान की, का समय 12वीं शती का उत्तरार्द्ध निर्धारित किया गया है।[15] तीसरा, आचार्य के जन्म स्थान के सम्बन्ध में, यह अतिरिक्त प्रमाण प्रस्तुत करता है कि आधुनिक कोनकोण्डा या कोण्डकुन्दी कोण्डकुन्दाचार्य का जन्मस्थान था।

हम यहाँ कुछ और तथ्यों का उल्लेख करेंगे। रसासिद्धूल पहाड़ी पर के एक अन्य अभिलेख में श्री विद्यानन्द स्वामी का उल्लेख है। संभवतः इसकी पहचान महान् जैन विद्वान् वादी विद्यानन्द से की जा सकती है, जो[16] 9वीं शती में हुए। वादी विद्यानन्द के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उन्होंने कोपण और अन्य तीर्थों में महान् उत्सव कराये।[17] जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कोण्डकुन्दे एक तीर्थ था और कोण्डकुन्दाचार्य का उससे सम्बन्ध होने के कारण निश्चित रूप से श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था, अतः यह बिल्कुल संभव है कि वादी विद्यानन्द ने इस स्थान का भ्रमण किया हो और यहाँ भी किसी प्रकार का धार्मिक समारोह सम्पन्न किया। तीसरा, यह कहा जाता है कि पहले इस ग्राम में अनेक जैन परिवार रहते थे जिनमें से कुछ अभी हाल तक विद्यमान थे।

इस स्थान से प्राप्त पुरावशेषों के मौलिक अध्ययन से हमारा विश्वास है कि कोनकोण्डला या कोण्डकुन्दी प्रारम्भिक समय से लेकर आधुनिक काल तक जैनधर्म का एक केन्द्र था और कोण्डकुन्दाचार्य का जन्मस्थान था। डॉ० उपाध्ये[18] इस आचार्य का समय लगभग पहली शती ई० निर्धारित करते हैं। तो भी, यह शंका करने के संकेत हैं कि यह स्थान इस आचार्य के, जो इस नाम के कारण प्रसिद्ध हुआ, जन्म से पहले भी जैनधर्म का केन्द्र था।[19] हम यह भी सम्भावना व्यक्त कर सकते हैं कि इस स्थान की महत्तर ख्याति का कारण इस महान् आचार्य की ख्याति थी।

अपने उपर्युक्त अध्ययन के समय हमने यह उल्लेख किया है कि कोणकुन्दे या कोण्डकुन्दी स्थान का मूल नाम था और यह कर्नाटक प्रदेश में था। इस स्थान से प्राप्त अधिकांश अभिलेख कन्नड़ भाषा में हैं। कुन्दे, कुन्द या गुण्ड से अन्त होने वाले नाम सामान्यतः कन्नड़ देश में मिलते हैं यथा मेल-कुन्दे, ओक-कुन्दे नरगुण्ड, नविल-गुण्ड आदि। वेलारी जिला में बल-कुन्दि नाम का एक गाँव है। इस नाम के उत्तरार्द्ध का अभिज्ञान कोण्डकुन्दि से किया गया है। यह उल्लेख करना मनोरंजक है कि इस गाँव का मूल नाम बल्लकुन्दे था, जो निश्चित रूप से कोण्ड-कुन्दे से समाप्त होता था। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कोण्ड और कुन्द नाम के दो कन्नड़ भाग हैं, जिनका प्रायः वही अर्थ है अर्थात् पहाड़ी। कन्नड़ कुन्द शब्द तामिल के कुण्णम् का समानवाची है। इस प्रकार कोण्डकुन्दे शब्द का अर्थ पहाड़ी बस्ती या ऐसा स्थान होगा जो पहाड़ी पर स्थित हो।[२०] शब्द का यह शाब्दिक भावार्थ कोण्डकुन्द ग्राम, जो पहाड़ी शृंखला के समीप है, उसकी स्थिति के सर्वथा अनुरूप है।

उपर्युक्त विवेचन से हमें आचार्य के सच्चे और सही नाम को, जो कोण्डकुन्द रहा होगा, पहचानने में मदद मिलती है। संस्कृत लेखकों द्वारा यह कुन्दकुन्द में परिवर्तित कर दिया गया। यहीं यह भी विचारणीय है कि कन्नड़ प्रदेश के अभिलेखों में सामान्यरूप से आचार्य का उल्लेख कोण्डकुन्द के ही रूप में किया गया है। परवर्ती लेखकों ने आचार्य के संस्कृत नाम विरुद 'कुन्दकुन्द' की व्याख्या हेतु कई आख्यान गढ़ लिये। उदाहरणार्थ, रत्नत्रय बसदि, बीलिगि, उत्तरी कनारा जिला, बम्बई राज्य के सोलहवीं शतीं के अभिलेख[21] में निम्नांकित विशिष्ट कहानी मिलती है। एक बार एक दुष्ट मनुष्य ने, जो आचार्य से शत्रुभाव रखता था, आचार्य की कोठरी में एक सुरापात्र छिपाकर रख दिया और राजा के समक्ष उसके निन्द्य चरित्र की शिकायत की। आचार्य को पात्र के साथ दरबार में बुलाया गया और आश्चर्य अपने पवित्र मन्त्रयोग से उन्होंने उसे चमेली के फूलों से युक्त पात्र में बदल दिया। तब से मुनि कुन्दकुन्द अर्थात् चमेली के पात्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-

1. यह शोधपत्र आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, अहमदाबाद 1953, के सत्रहवें सत्र के प्राकृत और जैनधर्म विभाग में पढ़ा गया था।
2. प्रवचनसार (श्री रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई, 1935), भूमिका, पृ. 1 तथा आगे।
3. प्रवचनसार, भूमिका, पृ. 5
4. एपिग्राफिया कर्नाटिका, खण्ड 5, वेलूर, 124
5. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड 3, पृ. 190। यह स्थान गुण्टकल रेल्वे स्टेशन से चार या पाँच मील की दूरी पर स्थित है। (अनुवादक)
6. साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्सन्स, खण्ड 9, अंक 1, क्र. 136।
7. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डिन एपिग्राफी, 1916, पृ. 134।
8. कोनकोण्डला ग्राम का भ्रमण मद्रास एपिग्राफिस्ट ऑफिस के सदस्यों द्वारा 1912, 1915, 1920 और 1941 ई. में किया गया । यहाँ से प्रतिलिपि किये गये अभिलेख एन्युअल रिपोर्ट्स आन साउथ इण्डियन एपिग्राफी की सम्बन्धित वार्षिक रपटों में सूचीबद्ध किये गये हैं। उनमें से कुछ अभिलेख साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्सन्स खण्ड 9 अंक 1 में विधिवत प्रकाशित किये गये हैं। उक्त एपिग्राफिकल ब्रांच का सदस्य होने क नाते मैंने 1950 ई० में यह स्थान देखा और उसके पुरावशेषों का निरीक्षण किया। मैं वहाँ कुछ नये अभिलेख ढूँढ़ने में सफल हुआ। लेकिन उनकी प्रतिलिपि नहीं की जा सकी या मौसम से प्रभावित होने के कारण वे ठीक से नहीं पढ़े जा सके। इस स्थान के पुरावशेषों का संक्षिप्त वर्णन आंध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी, खण्ड 17, पृ. 164-65 में भी उपलब्ध है।
9. एन्युअल रिपोर्ट्स आन साउथ इण्डियन एपिग्राफी, 1939-40, परिशिष्ट-बी, 1940-41 का क्र. 453
10. वहीं, क्र० 45।
11. साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्सन्स, खण्ड 9, अंक 1, पूर्वोक्त क्र० 150
12. जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कोण्डकुन्दे नाम इसी स्थान के 1071 ई० के अभिलेख में भी मिलता है।
13. साउथ इण्डियन इस्क्रिप्सन्स, खण्ड 9, अंक 1, पूर्वोक्त क्र० 288
14. प्रवचनसार, भूमिका, पृ० 7-8
15. वही, भूमिका पृ० 104
16. एन्युअल रिपोर्ट्स आन साउथ इण्डियन एपिग्राफी, 1939-40 से 1942-43, परिशिष्ट बी क्र० 1940-41 का क्र. 452। मैंने इस अभिलेख की मूल छाप का परीक्षण किया है और मेरा विचार है कि तिथिहीन होने के कारण, लिपि के आधार पर इसका समय 16वीं शती निर्धारित किया जा सकता है।
17. एपिग्राफी कर्नाटिका, खण्ड 8, नगर 46
18. प्रवचनसार, भूमिका पृ. 22
19. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 11-12
20. प्रतीत होता है कि कन्नड़ में कुन्द या गुन्द और तामिल में कुण्णम् से अन्त होने वाले नाम मूलरूप से पहाड़ी से सम्बन्धित होने के कारण या उत्तुंग क्षेत्र में स्थित होने के कारण बने।
21. यह अभिलेख मेरे अप्रकाशित व्यक्तिगत अभिलेख संग्रह में है। इस अभिलेख का पाठ प्रसिद्ध कन्नड़ वैयाकरण भट्टाकलंक द्वारा रचा गया था।

'महावीर जयन्ती स्मारिका 75'
से साभार

फूल नहीं काँटे

सर्दी का समय था एक दिन प्रातः काल आचार्य श्री के पास कुछ महाराज लोग बैठे हुए थे, ठण्डी हवा चल रही थी, ठण्डी लग रही थी, शरीर से कँपकँपी उठ रही थी। आचार्य श्री से कहा देखो आचार्य श्री जी शरीर से काँटे उठ रहे हैं। आचार्य श्री ने कहा हाँ शरीर से काँटे ही उठते हैं फूल नहीं। शरीर दुख का घर है। इसके स्वभाव को जानो और वैराग्य भाव जाग्रत करो। शरीर को नहीं बल्कि शरीर के स्वभाव को जानने से वैराग्य भाव उत्पन्न होता है।

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकगीतों में कुण्डलपुर और बड़े बाबा

श्रीमती डॉ० मुन्नीपुष्पा जैन

पवित्र सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर मेरी जन्मभूमि दमोह (म०प्र०) के समीप होने के कारण बचपन से ही मेरे अतिश्रद्धास्पद इष्टदेव यहाँ के बड़े बाबा की भव्य एवं विशाल प्रतिमा एवं इस तीर्थ की वंदना-अर्चना करने का सुयोग प्राप्त होता रहा है। साथ ही इस क्षेत्र की अपनी बुंदेली लोक-भाषा-संस्कृति और लोकगीतों के प्रति गहरा लगाव भी आरम्भ से होना स्वाभाविक है। जब यहाँ प्रचलित बुंदेली लोकगीतों की ओर मेरा विशेष ध्यान गया, तो यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इनमें से अनेक लोकगीतों में तो सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर और यहाँ के इष्टदेव बड़े बाबा समाये हुए हैं। ऐसे अनेक लोकगीत जिन्हें मैंने अपनी पूज्य दादी-नानी, माँ और पास-पड़ौस की बुजुर्ग महिलाओं से बचपन में सुने थे, वे आज स्मृति के माध्यम से अपने आप जुबान पर आ गये।

किसी भी क्षेत्र की बोली के लोकगीत उस क्षेत्र-विशेष की पहचान होते हैं, क्योंकि इनमें अपनी परम्पराओं, रीति-रिवाजों और लोक-संस्कृति आदि को सुरक्षित रखने की अपूर्व क्षमता होती है। प्राचीन समय में ये गीत किसी पुस्तक में लिखित नहीं होते थे, अपितु वाचिक (श्रुति) परम्परा से स्वभावतः पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते आये हैं, इसलिए ये अब तक जीवित हैं। किन्तु अब इस टेलिविजन आदि के आधुनिक युग में इन लोकगीतों की सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। इसलिए अब इनकी वाचिक परम्परा के साथ इनका लेखन संकलन अनिवार्य हो गया है। इन लोकगीतों में जो अपनापन, अपनी मिट्टी की सुगंध और अपनों तथा अपनी परम्पराओं आदि से निरन्तर जुड़े रहने का जो स्वाभाविक भाव है वह अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही ये कृत्रिमता से दूर सहज-सरल रूप में हृदय में समा जाते हैं। लोकगीतों को याद रखने हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। विशेषता यह कि लोकगीतों को याद रखने के लिए पढ़ा-लिखा या अत्यधिक तेजबुद्धि होना भी आवश्यक नहीं होता। क्योंकि जैसे ही कोई इन लोकगीतों को समूह में गाना शुरू करता है, सभी अन्य लोग सहज ही स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगते हैं।

वाचिक रूप से प्रचलित तथा कुछ आज के लिखित अन्यान्य स्रोतों से प्राप्त उन कुछैक बुंदेली लोक भजनों को (सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर एवं बड़े बाबा से संबंधित) उदाहरणार्थ इस निबंध के माध्यम से संकलित करना इसलिए उचित समझा, ताकि ये आधुनिकीकरण के इस युग में लुप्त न हो जायें।

ये बुंदेली बोली लोकभजन प्रायः सामूहिक रूप से गाये जाते रहे हैं। इस तीर्थ के आस-पास एवं दूर-दूर बसे गाँवों से लोग मिलजुलकर पैदल तथा बैलगाड़ी आदि साधनों से बड़े बाबा के दर्शनों को आते थे और इन लोकभजनों को गाते हुए अपनी मंजिल तक पहुँच जाते थे। सारा संसार एक तरफ और बड़े बाबा के प्रति अगाध भक्ति एक तरफ। अपने मन को संबोधित करते हुए लोग भाव-विभोर होकर गाते रहे हैं कि-

चलो-चलो रे सकल परवार, लाल कुण्डलपुर क्षेत्र सुहावनो।
इक शोभा बड़े बाबा की, पधारे पलौथी लगाये॥
लाल कुण्डलपुर क्षेत्र सुहावनो॥
इक शोभा उनके मंदर की, जहाँ छत्र चढ़े सौ साठ।
इक शोभा उनके पर्वत की, जहाँ शेरभरे हुंकार॥
लाल कुण्डलपुर क्षेत्र सुहावनो॥
इक शोभा वापी तालों की, जहाँ यात्री करे स्नान।
इक शोभा धरमशाला की, जहाँ यात्री बसें सौ साठ॥
लाल कुण्डलपुर क्षेत्र सहावनो॥

कुछ इसी तरह बड़े बाबा की भक्ति की महिमा की बानगी देखिए-

मन छोड़ सकल संसार, सरन चल कुण्डलपुर बाबा।
बाबा का बड़ा दरबार, सरन चल कुण्डलपुर बाबा॥
तीर्थस्थली बुन्देलखण्ड की, कीरत परम सुहावनी।
सकल काम पूरण, मोक्खधाम, जा देवन की रजधानी॥
हर पथ तीरथ को जावै, बड़े भाग्य इतै जो आवै॥
पावै भवसागर पार, सरन चल कुण्डलपुर बाबा॥
कुण्डलगिरि गौहर सर सुन्दर, निर्मल नीर नहाने।
ता पे मंदिर भाल देख, मन के पाप हिराने॥
चले इतै वन्दना कर लें, मन खाली झोली भर ले।
सरन चल कुण्डलपुर बाबा, सब सुख ले हाथ पसार॥
मूरत बड़ी विशाल, पद्मासन बाबा जी सोहें।
भक्त सिरोमन जन-जीवन सब दरसन कर मोहे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरी करवै सवई की आसा, वे जानत मन की भाषा।
मन के हरत सबई विकार, सरन चल कुण्डलपुर बाबा॥

बड़े बाबा की भक्ति में लोग इतने सराबोर हैं कि उन्हें सपने में भी बड़े बाबा मुक्ति का मार्ग बताते हुए दिखाई देते हैं। 'निपुण सराफ' ने अपने इस गीत में इन्हीं भावों को प्रस्तुत किया है-

रात सपने में मोरे आय गये री सबसे बड़े बाबा।
सोते से मोय जगाय गये री, कुण्डलपुर के बाबा॥
मिथ्यातम में सोई पड़ी थी।
समकित की लौं लगाय गये री कुण्डलपुर के बाबा॥
अब तक करत रई काया की पूजा।
चेतन की पूजा सिखाए गये री कुण्डलपुर के बाबा॥
माया के पीछूं भई ती दीवानी।
आखों की पट्टी हटाय गये री कुण्डलपुर के बाबा॥
जब मैंने निपुण पकर लइ पैंया।
मुकति का मारग बताये गये री कुण्डलपुर के बाबा॥

दूर-दूर के गाँव-देहात के सभी समाज के लोग कुण्डलपुर का वार्षिक मेला तथा दीपावली जैसे अनेक विशेष अवसरों पर बड़े बाबा के दरबार में अपनी हाजिरी लगाने जरूर आना चाहते हैं। साथ ही अपनी समस्याओं और शिकायतों तथा अपनी भावनाओं को अपने लोकगीतों में व्यक्त करते हुए चलते हैं-

चलो चलिए कुण्डलपुर खों आज,
उतै तो बड़ी भीर जुरी।
जा देखो जा ठाड़ी फसल है,
बिटिया को करने काज उतै तो बड़ी भीर जुरी।
कल्लु के दद्दा खों को समझावै,
चमड़ी जाये पे दमड़ी न जावै।
उनमें के मंसेलू आंय। उतै तौ बड़ी भीर जुरी।

बड़े बाबा मात्र जैनों के ही नहीं, बल्कि जन-जन के इष्टदेव हैं। कितने ही घर परिवार उन्हें अपना कुलदेवता पीढ़ियों से मानते आ रहे हैं। उनका हर शुभकार्य बड़े बाबा का नाम लेकर प्रारंभ होता है और हर कार्य की सफलता का भरोसा बड़े बाबा पर है। देखिए क्या चाहते हैं लोग अपने इष्टदेव बड़े बाबा से-

मुगलबादशाह डर कें भागे, छत्रसाल जू ने पाँव पखारे।
आ जइयौ काम हमारे, बड़े बाबा आ जइयौ काम हमारे॥
बैठे हाथ पे हाथ पसारैं, नासा पर दृष्टि हैं धारैं।
सबरें करम तुम से हैं हारे, बड़े बाबा आ जइयौ काम हमारे।

एक और भावयुक्त गीत-

नइया कोउ को कोउ सहाई, सबरे स्वारथ के हैं भाई।
विपत समय एक तुमाय बिना, कोउ न देत दिखाई॥
मरे बिना सुरग ने मिल है, मंत्रर तुमी से पाई।
सबरे मिल लोग-लुगाई, बड़े बाबा से आस लगाई॥
नइया कोउ को कोउ सहाई।

यहाँ बच्चों का पहला मुंडन कराना शुभ माना जाता है। अत: बच्चों के मुंडन के समय गाये जानेबाला एक लोकगीत चिर-नवीन है। इसमें बड़े बाबा से उलाहना के रूप में भाव व्यक्त है कि बाबा आप स्वयं तो बड़े-बड़े वालों वाले हैं, परन्तु हमारा मुंडन क्यों?-

कुण्डलपुर के बाबा जटाधारी
मोरी पकर चुटइया मुड़ा डारी।
कुण्डलपुर के बाबा कलाधारी
मोड़ा की चुटइया मुड़ा डारी॥

बड़े बाबा के अभिषेक-पूजन के साथ-साथ सायंकालीन भव्य आरती का बहुत महत्त्व है। यहाँ तक कहा सुना जाता है कि मनुष्य तो मनुष्य देवता तक बड़े बाबा की आरती करने आते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि आधी रात के सन्नाटे में बड़े बाबा के बंद मंदिर से संगीतमय नृत्य गीतादि की आवाजें सुनी जाती रही हैं। इस तरह बड़े बाबा का बहुत अतिशय माना जाता है। लोकगीतों की अनेक राग रागनियों में से एक विशेष राग को 'लंगुरिया' कहा जाता है। इसके गाने की एक विशेष लय होती है। बड़े बाबा की महाआरती को लक्ष्य करके गाया जाता है-

मोरे आरत के भये हैं भाव,
लंगुरिया चलो सु आरति कर आइये।
वे तो सज-धज के बस आये है,
उनने मंगल दीप जलाये हैं।
पग घुंघरु की सुन झंकार,
लंगुरिया चलो सु आरति कर आइये।
उनकी महिमा को कवि कोई गा न सके
उनसे हारे हैं, सूरज चांद, लंगुरिया,
चलो सो आरति कर आइये॥

महापर्व दीपावली के अवसर पर 'लाडू' चढ़ाने के लिए यहाँ हजारों की संख्या में लोग पहुँचते हैं तथा विशेष भजन-आरती आदि के कार्यक्रम होते हैं। सन्मतिमंडल खमरिया, का यह गीत प्रस्तुत हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झूलो रे नित नैनों में बड़े बाबा कुण्डलपुर वारे।
पलकन विछाई तोहें पलकियाँ झुलना विरोंनी बारे॥
कार्तिक बीच सबई जुर आवें, सारी रतियन आरति गावें।
सन्मतिमण्डल लाडू चढ़ावत, हो जावे भुन्सारे॥
बीच पहडिया आपो विराजे, शोभा अतिशय मन्दिर साजे।
माथो झुक झुक जावे सवई को, पोंचें जो भी द्वारे॥
बीच पहड़िया आपो विराजें, शोभा अतिशय मंदिर साजे।
माथो झुक झुक जावे सबई को, पोंचें जो भी द्वारे॥

कुण्डलपुर की वन्दना का शुभारंभ 'छहघरिया' से होता है। 'छहघरिया' नामक परिवार द्वारा यहाँ के मंदिर एवं सीढ़ियाँ बनवाये जाने के कारण पहाड़ का यह नाम पड गया। 'छहघरिया' (पहाड़ की सीढ़ियाँ) चढ़ गये तो समझों आगे की पूरी वन्दना सहजता से हो जायेगी, ऐसा सभी लोगों का अनुभव रहता है। इसके लिए लोकगीत के बोल इस प्रकार हैं-

शुद्धि कर लो द्रव्य सजा लो, निंगलो थोरी डगरिया।
पेलउं चढ़ने है छहघरिया॥
मिलके सब जयकारा बोलो, विसरादो सारी खबरिया
पेलउं चढ़ने है छहघरिया॥

कुण्डलपुर की शान में 'नर-नारी तो ठीक, देवता दरसन खों तरसें' इस यथार्थ सत्य को उद्घाटित करते हुए बुंदेली के प्रसिद्ध जैन कवि 'सुन्दरलाल पटेरा' ने अपनी कलम को धन्य किया है। बुन्देली पुट लिए हुये यह गीत हर किसी को गुनगुनाने को मजबूर और जिन्होंने अभी कुण्डलपुर बड़े बाबा के दर्शन न किये हों उनकी भावनाओं को मजबूत कर देता है। दर्शनाभिलाषियों के लिए 'पटेरा' जी का भावभीना निमंत्रण इस गीत के माध्यम से इस प्रकार है-

अनोखी कुण्डलपुर की शान, विराजें आदिनाथ भगवान्।
प्रभु की अद्भुत छाया है,
कुण्डलपुर में वीर बड़े बाबा का माया है।
बात मोरी सुन लइयो, तनक सी गुन लइयो,
दर्शहित आ जइयो।
इते सोने को होत प्रभात, चाँदी सी होती रात।
खुदा की अजब खुदाई है,
धरती की सुन्दरता इते समाई है
बात मोरी ----
इते जो भी दर्शक आ जाय, जपे सो मनवांछित फल पाय।
मिटत है भव-भव के दावा, जयति जय वीर बड़े बाबा॥
बात मोरी ----
शिखर पे शिखर, शिखर की शान,
इते के कण-कण में भगवान्
लगत है इतै बड़े नोनो, इतै की माटी है सोनो।
बात मोरी सुन ----
भरो है वर्धमान में नीर सुद्ध कर लीजो पैलउं शरीर।
नीर निर्मल मन भाता है, तन का मैल धुले तो धुले।
मन का भी धुल जाता है।
बात मोरी सुन लइयो ---
फर्क का जैनी और अजैन, दर्शन को लगी रेत है लैन।
बड़े बाबा के दरवार में अमृत सो बरसै॥
नर-नारी तो ठीक, देवता दर्शन खों तरसें।
बात मोरी सुन लइयो, तनक सी गुन लइयों
दर्शहित आ जइयो॥

बुजुर्गों के मुख से सुने गये इस लोकगीत के साथ हम अपनी बात पूरी करेंगे-

कुदेवों को छोड़ो, कुगुरुओं को छोड़ो,
भजलो बाबा कुण्डलपुर के।
तर जैहो रे सबरे कुटुम्ब भर के
कुशास्त्रों को छोड़ो, कुदेवियों को छोड़ों,
चरणों में आओ केवली श्रीधर के।
तर जैहो रे सबरे कुटुम्ब भर के
धरम का मारग बतावें जिनवाणी
छोड़ो देवता दुनियाभर के।
तर जैहो रे सबरे कुटुम्बभर के

इस तरह इस आलेख के माध्यम से बुन्देली के कतिपय गीतों को, जिसमें विशेषकर सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर एवं बड़े बाबा की महिमा को उद्घाटित किया गया है, संकलित किया है। प्रयास करने पर ऐसे ही और भी गीतों का पता लगाया जा सकता हैं। बुजुर्गों के पास इन गीतों की निधि स्मृतियों में सुरक्षित हो सकती है। समय रहते इसे संकलित किया जाना अपेक्षित है।

अनेकान्तविद्या-भवनम्
बी-23/45, पी-6, शारदानगर कॉलोनी
खोजवाँ, वाराणसी-10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पाहिल्ल श्रेष्ठी

पं० कुन्दनलाल जैन

कुछ वर्ष पूर्व खजुराहो में एक संगोष्ठी में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ जिननाथ (आदिनाथ) मन्दिर में उसके निर्माता उदार-हृदय पाहिल्ल श्रेष्ठी (९५४ ई.) का महती विनम्रता से भरा शिलालेख पढ़ने को मिला, तो हृदय भर आया। इस लेख में श्रेष्ठी महोदय ने स्वयं को 'दासानुदास' विशेषण से संबोधित किया है।

पाहिल्ल श्रेष्ठी संबंधी प्रस्तुत शिलालेख जिननाथ मन्दिर के प्रवेशद्वार की बाईं चौखट में गहरी छेनी से उकेरा गया है जो आज ग्यारह सौ वर्ष बाद भी स्पष्ट पढ़ने में आता है।

उस शिलालेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भव्य पाहिल्ल श्रेष्ठी ने खर्जुरवाहक (खजुराहो) में तत्कालीन द्वितीय चन्देल नरेश धंगराज (जो महाराज यशोवर्मन प्रथम के बाद चंदेला राज्य के उत्तराधिकारी बने) के समय में इस जिननाथ मन्दिर का निर्माण कराया था तथा इसकी सुरक्षा, पूजा-पाठ, आरती आदि पुनीत कार्यों के लिए सात वाटिकाएँ-बगीचे दान में दिए थे, जिससे जिननाथ मन्दिर के सुसंचालन में किसी तरह की बाधा न आवे, साथ ही विनम्र निवेदन किया कि मेरे तथा मेरे वंश के नष्ट हो जाने के बाद जो भी भव्यपुरुष इस मंदिर की देखभाल तथा साज-सँभार कर इसकी सुरक्षा करता रहेगा, उसका यह पाहिल्ल श्रेष्ठी युगों-युगों तक दासों का दास बना रहेगा। कितनी उदार और विनम्र भावना है पाहिल्ल श्रेष्ठी की, कि स्वनिर्मित जिन मन्दिर की सुरक्षा करनेवालों के प्रति वे इतनी अधिक कृतज्ञता और विनम्रता प्रकट करते हैं। इसी शिलालेख के साथ ३४ के जोड़वाला यंत्र भी उत्कीर्ण है। यह नौ घरोंवाला है जो संभवतः नवकार मंत्र का प्रतीक हो, इसमें अंकित अंकों को किसी भी तरफ से जोड़ों, सबका जोड़ ३४ ही आयेगा। संभव है यह ३४ की संख्या अरहंत के ३४ अतिशयों की द्योतक हो।

धन-कुबेर पाहिल्ल श्रेष्ठी गृहपति (गहोई) वंश में उत्पन्न हुए थे। बुन्देलखण्ड के धन कुबेर पाड़ासाह भी गृहपति वंशान्वयी थे। पाहिल्ल श्रेष्ठी के पिता का नाम देदू था और पुत्र का नाम साहू साल्हे था। साहू साल्हे के पुत्र महागण, महीचन्द्र, श्रीचन्द्र, जितचन्द्र और उदयचन्द्र आदि थे। श्रेष्ठी पाहिल्ल के पुत्र साहू साल्हे ने माघ सुदी ५ सं. १२१५ (ई. सन् ११५८) को खजुराहो में भगवान् संभवनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। इस प्रतिमा के मूर्तिकार का नाम रामदेव था। यह प्रतिमा श्यामवर्ण पाषाण की विशाल मनोज्ञ मूर्ति है। इस मूर्ति का वजन लगभग चार-पाँच क्विंटल से अधिक होगा।

इस मूर्ति-लेख में वर्णित पाहिल्ल श्रेष्ठी तथा जिननाथ मन्दिर के निर्माणकर्त्ता पाहिल्ल श्रेष्ठी में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर दिखाई देता है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना के समय पाहिल्ल श्रेष्ठी दिवगंत हो गये होंगे, उनके पुत्र साहू साल्हे तथा पौत्रों ने अपने पिता व दादा की पुण्य स्मृति को चिरकाल तक जीवित रखने के लिए उनका नाम इस मूर्ति के पाद-पीठ में अंकित करा दिया होगा। इस समय चन्देल वंश उन्नति और समृद्धि के चरम शिखर पर था, इनमें से कई राजा तो जैनधर्म के प्रति बड़े उदार और अनुरागी थे। उनके शासनकाल में जैनधर्म को खूब फलने-फूलने का अवसर मिला।

यहाँ हम उन चन्देल राजाओं का संक्षिप्त-सा विवरण दे देना अनुचित नहीं समझते, जिनके राज्य में जैनधर्म को प्रश्रय और संरक्षण मिला, जिससे जैनधर्म के साथ-साथ जैनशिल्प, जैनसाहित्य और जैनकला पल्लवित एवं पुष्पित हुई और उन्नति एवं अभिवृद्धि के चरम शिखर पर पहुँची। बुन्देलखण्ड में चन्देल वंश की नींव सर्वप्रथम नन्नुक चन्देला (नवमी सदी) ने स्थापित की, जिसने कल्याणकटकपुर (कालिंजर) में किले का निर्माण कराया था। यह नन्नुक चंदेला गोल्लदेश का निवासी था। जब गोल्लदेशाधिप पड़ौसी राज्य से पराजित हो गोल्लाचार्य बन गये तो नन्नुक गोल्लदेश से भागकर कालिंजर का प्रथम चन्देल राजा बना। इसने गोल्लदेश निवासी गोलालारों, गोलापूर्वों एवं गोल्लश्रृंगों को आश्रय दिया और अपने राज्य में बसाया? ये लोग जैन धर्मानुयायी थे। इनके लिए गोल्लपुर विशेष रूप से बसाया गया जो महोबा के पास था। लखनऊ म्यूजियम के मूर्ति-लेखों में यह तथ्य उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी चन्देलवंश में यशोवर्मन प्रथम नामक प्रतापी राजा हुआ। यह बड़ा न्यायप्रिय राजा था। इसने अपने महल के मुख्य द्वार पर न्याय-घंटिका लगवा रखी थी, जिसे कोई भी दुखियारा बजाकर न्याय की माँग कर सकता था- ''कल्याणकटके पुरे यशोवर्मनृपतिस्तेन धवलगृहद्वारे न्यायघण्टा बद्धा।'' लगता है इस घटना से प्रभावित हो आगे चलकर बादशाह जहाँगीर ने भी इस प्रथा को कायम रखा। इसी यशोवर्मन प्रथम के पुत्र धंगराज ने चन्देल राज्य की सीमाओं को बढ़ाकर अपनी कीर्ति विस्तृत और चिरस्थायी बनाई थी। इसी के राज्य में हमारे इस लेख के नायक पाहिल्ल श्रेष्ठी ने खजुराहो में जिननाथ-मंदिर बनवाया था तथा इसी राजा के नाम पर विकसित और निर्मित धंग वाटिका अन्य छः वाटिकाओं के साथ स्वनिर्मित जिननाथमंदिर के लिए दान में दी थी।

धंगराज के बाद उसका पुत्र गंडराज और फिर उसका पुत्र विद्याधर चन्देलवंश का उत्तराधिकारी हुआ। विद्याधर का उल्लेख दूबकुण्ड (ग्वालियर) के विशाल शिलालेख में है, जो एक जैनमन्दिर के निर्माण के समय महाराज विक्रमसिंह के राज्यकाल में लिखा गया था। विद्याधर के बाद इस राज्य का उत्तराधिकारी विजयपाल हुआ और उसके बाद कीर्तिवर्मा, जिसने सं. ११५४ के लगभग लुअच्छगिरि नाम से प्रसिद्धि-प्राप्त देवगढ़ का नाम कीर्तिनगर रखा था और यहाँ जैनशिल्प का विकास कराकर इसे जैनशिल्प का प्रसिद्ध केन्द्र बना दिया था।

कीर्तिवर्मा की एक पीढ़ी के बाद चन्देलवंश का उत्तराधिकारी मदनवर्मन हुआ जो बड़ा प्रतापी और उत्कृष्ट शासक था। इसके राज्यकाल में जैनधर्म की बड़ी प्रगति हुई। पपौरा में स्थित मूर्ति-लेखों से इसकी जैनधर्मप्रियता का आभास मिलता है। खजुराहो-स्थित मूर्तियों में भी इस राजा का उल्लेख है, जो श्रेष्ठी पणिधर ने निर्मित कराई थीं।

कोक्कल के शिलालेख में भी इन (मदनवर्मदेवस्य प्रवर्द्धमान विजयराज्य) का उल्लेख मिलता है। महोबा से प्राप्त मूर्तियों में भी महाराज मदनवर्मदेव का नामोल्लेख मिलता है। मदनवर्मदेव के बाद उसका पुत्र यशोवर्म द्वितीय हुआ, जो अपने पिता के सामने ही दिवंगत हो गया था। अतः मदनवर्मदेव के पश्चात् चन्देलवंश का उत्तराधिकारी परमर्दिदेव हुआ। मदनवर्मदेव के समय में ही 'अहार' में, जिसे 'मदनेस सागरपुर' कहा जाता था, तीर्थंकर शान्तिनाथ की प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रतिमा पाड़ासाह के वंशजों ने प्रतिष्ठित कराई थी। मदनवर्मदेव ने अपना राज्य मालवा तक फैला दिया था। इसलिए परमर्दिदेव 'दशार्णाधिपति' की उपाधि से सुशोभित हैं।

महोबा से प्राप्त सं. १२२४ की जैनमूर्ति में परमर्दिदेव को 'प्रवर्द्धमानकल्याणविजयराज्ये' से सम्बोधित किया गया है। अहार से प्राप्त एक जैनमूर्ति सं. १२३७ में भी राजा परमर्दिदेव का उल्लेख है। परमर्दिदेव के बाद चंदेलवंश का उत्तराधिकारी त्रैलोक्यवर्मन हुआ जिसने छत्तीस वर्ष राज्य किया था। पर जैनधर्म-संबंधी किसी कार्य का उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता है। त्रैलोक्यवर्मन के बाद चंदेलवंश का अन्तिम राजा वीरवर्मदेव हुआ जिसका उल्लेख अजयगढ़ (पन्ना) के तीर्थंकर शान्तिनाथ के मंदिर में है, जिसकी नींव आचार्य कुमुद्रचन्द्र ने सं. १३३१ में रखी थी। अजयगढ़ में श्रेष्ठी सोढ़ल द्वारा प्रतिष्ठित सं. १३३५ में तीर्थंकर शान्तिनाथ की प्रतिमा के पादपीठ में भी महाराज वीरवर्मदेव का नामोल्लेख है। इस तरह चंदेलवंश के लगभग चार सौ वर्षों के शासन में दस राजा हुए, जिनके प्रश्रय और संरक्षण से जैनधर्म को बुन्देलखण्ड में खूब फलने-फूलने का अवसर प्राप्त था।

अन्त में हम चन्देलों के धन-कुबेर पाहिल्ल श्रेष्ठी का पुण्य स्मरण करते हुए उनकी उदार एवं विनम्र सद्वृत्ति का गुणानुवाद करते हैं और शत-शत नमन करते हैं, जिसे हजार वर्ष बाद भी नहीं भूल सके हैं, भावी-पीढ़ी भी उनका आदर करती रहेगी।

श्री कुन्दनलाल जैन-कृत
'जैन इतिहास के प्रेरक व्यक्तित्व भाग १'
से साभार

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

धन की तीन गतियाँ होती हैं- दान, भोग और नाश। जो न दान करता है, न भोग उसके धन की तीसरी गति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच्चों को यौन शिक्षा ?

डॉ० श्रीमती ज्योति जैन

पिछले दिनों मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा के०जी० से लेकर 12वीं कक्षा तक के बच्चों के लिए यौन शिक्षा लागू कराये जाने का प्रस्ताव आया साथ ही इसके लिये अध्यापक-अध्यापिकाओं को यौन शिक्षा की ट्रेनिंग भी दी जा रही है। छोटे बच्चों को यौन-शिक्षा देना हमारी भारतीय संस्कृति पर एक सुनियोजित कुठाराघात है।

विश्व में आध्यात्मिकता का परचम लहरानेवाला भारत देश संस्कारों और योग-ध्यान की शिक्षा में भी विश्व-गुरु है। यह देश व्यवस्थित कामशास्त्र का जनक तो है ही पर ब्रह्मचर्य को भी सर्वोच्च साधना मानता है। 'संयम ही जीवन है' इस आदर्श वाक्य का आज भी लाखों लोग पालन कर रहे हैं, पर बदलती-परिस्थितियों और आधुनिकता के दुष्प्रभाव का व्यक्ति और समाज पर प्रभाव बढ़ता दिखायी दे रहा है। पाश्चात्य संस्कृति को आत्मसात् कर 'सेक्स ही जीवन है' और 'पैसे बस पैसे' की भोगवादी संस्कृति का जादू नई पीढ़ी के ऐसा सिर चढ़ रहा है कि वे एक स्वछन्दतावादी जीवनशैली जीने के आदी होते जा रहे हैं। अश्लीलता, यौनकुंठा और निर्लज्जता का खुला खेल ड्रांइग रूम की टी० वी० से लेकर सड़कों पर लगे कंडोम के बड़े-बड़े विज्ञापनों में समाचार पत्रों की रंगीन सेक्सी तस्वीरों, इंटरनेट की अश्लील बेवसाइटों आदि न जाने किन-किन रूपों में खेला जा रहा है। घटिया सेक्सी फिल्में, टी० वी० में विकृति दिखाते चैनल, फैशन शो, अश्लील चुटकुले, कुत्सित साहित्य, सेक्सी विज्ञापन, द्विअर्थी संवाद, अश्लील एस.एम.एस., डेटिंग आदि के इस खुले माहौल में युवा-पीढ़ी डगमगा रही है और डगमगा रहे हैं हमारे नैतिक मूल्य और संस्कार। मोबाइल कैमरे से उतारी अतरंग तस्वीरें पलभर में देश के कोने कोने में पहुँच जाती है। उत्तेजना और कामुकता के इस माहौल में अविवाहित युवक-युवतियाँ यहाँ तक कि किशोरो के बीच सेक्स सम्बन्धों की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। युवाओं और किशोरों में बढ़ती यौन उन्मुक्तता भारत जैसे विकासशील देश की संस्कृति पर दुष्प्रभाव डाल रही है।

आज विभिन्न माध्यमों से स्त्री-पुरुष को शोपीस बनाकर उनके अंग-अंग को प्रदर्शित कर जो भोंडा प्रदर्शन किया जा रहा है उसका समाज/घर/परिवार व्यक्ति पर जो प्रभाव पड़ रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। पारिवारिक रिश्ते एवं सामाजिक मूल्य तार-तार हो रहे हैं। अखवारों की सुर्खियाँ सैक्स अपराधों से भरी रहती हैं। विचारणीय बात तो यह है कि नैतिकता व संस्कारों की कमी से युवा पीढ़ी में संयमहीनता बढ़ती जा रही है। वस्तुतः समाज एवं राष्ट्र व्यक्तियों की नैतिक एवं संयमित शक्तियों से ही समृद्ध होता है। नैतिकता का पतन राष्ट्र का पतन है।

पाश्चात्य देशों में खुले माहौल को देखते हुए यौन शिक्षा पर बल दिया गया था, पर इसका कोई सकारात्मक रिजल्ट सामने नहीं आया। उल्टे 'टीन एजर्स मदर्स' की संख्या बढ़ गयी। कच्ची उमर में गर्भपात की संख्या में वृद्धि पायी गयी। असमय की यौनशिक्षा कुप्रभाव पैदा कर सकती है। शारीरिक विकास के दौरान समय आने पर शरीर में सेक्स संबंधी हारमोन्स बनने लगते हैं। समय से पहले उनसे छेड़छाड़ करना विकास पर असर डालता ही है, मानसिक विकृतियाँ भी पैदा करता है। जहाँ तक पाठ्यक्रम का सवाल है बॉयोलाजी, होमसाइंस जैसे विषयों को पढ़ते समय बहुत सी जानकारी विद्यार्थियों को हो जाती है। अतः असमय और अपरिपक्व अवस्था में यौन शिक्षा विचारणीय है? विषय-विशेषज्ञों का भी कहना है कि किशोरवय अथवा अल्प आयु में प्रारम्भ यौन संबंध उन्हें नपुंसकता की ओर ले जायेंगे। पाश्चात्य देशों में आज घर-परिवार जैसी संस्था को व्यवस्थित करने पर पूरा ध्यान दिया जा रहा है। ऐसे में आवश्यक है कि हम भी अपनी परिवारसंस्था को भोगवाद से बचायें और उसे मजबूत बनायें। असंयम का आचरण सामाजिक असंतुलन ही पैदा करेगा।

यौन-शिक्षा के सम्बन्ध में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि इससे एच० आई० बी०, एड्स, जैसे रोगों पर काबू पाया जा सकेगा पर एच० आई० बी० एवं एड्स की आड़ में विज्ञापनों का खुला खेल भोगवाद और व्याभिचार को बढ़ावा दे रहा है। यह भी एक दुखद तथ्य है कि दुनियाभर के एड्स रोगियों में अधिकतर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

25 वर्ष से कम आयु के हैं। भारत में लगभग चालीस लाख एच० आई० वी० संक्रमित लोग हैं। गरीबी, बेरोजगारी, नशाखोरी, रक्तदान, यौनकर्मी, ट्रक-ड्राइवर, स्वछन्द यौन संबंधों में विश्वास रखने वाले, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, पीड़ित माता पिता आदि एड्स फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

एड्स की रोकथाम के लिये विज्ञापनों पर पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारत के बाजारों को कंडोम, गर्भनिरोधकों एवं सेक्स सामग्रियों से पाट दिया है। यही कारण है कि अविवाहित युवाओं में इनका खूब प्रयोग होने लगा है। 'कण्डोम साथ लेकर चलो' संदेश देते विज्ञापन जहाँ बच्चों में उत्सुकता बढ़ा रहे हैं, वहीं युवा-किशोरों को भ्रमित कर रहे हैं। इससे यौन विकृतियाँ ही बढेंगी। देखा जाये तो एक तरह से देश की सुसंस्कृति को विकृति में बदलने का षड्यंत्र सा रचा जा रहा है। एड्स के प्रति हौवा खड़ा करके आंकड़े बढ़ा चढ़ा कर पेश कर एक कुचक्र रचा जा रहा है। एड्स के कारण मलेरिया, टी० वी०, मधुमेह, हृदय रोगियों की बढ़ती संख्या पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

यौनशिक्षा एड्स की रोकथाम के लिए ही क्यों? जब कि सरकार ने राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण बोर्ड, राष्ट्रीय एड्स समिति का गठन किया है, जो आम जनता को एच० आई० वी० संक्रमण, प्रवृत्ति एवं विस्तार की जानकारी देते हैं तथा एड्स संबंधी प्रचार प्रसार एवं रोकथाम का कार्य भी करते हैं। सरकार ने समय-समय पर अनेक रूपों में कानूनी एवं अन्य सहायता की घोषणा की है। एड्स के संक्रमण के विस्तार को देखते हुए गैर सरकारी संगठनों, स्वयंसेवी सामाजिक संस्थाओं का भी योगदान है। 'शरण' 'सहारा', 'प्रयास' जैसी अनेक संस्थायें एड्स पीड़ितों के लिए कार्य कर रही है। पीड़ित व्यक्ति अपना सुख दुख बाँट सके, जिन्दगी नरक न बने, डाक्टरी सहायता व दवा उपलब्ध कराना और रोगी सार्थक जीवन जी सके आदि उद्देश्यों की पूर्ति ये संस्थायें करती हैं।

आज लोगों (विशेषकर युवा-किशोरों) को अध्ययन, नौकरी एवं अन्य कारणों से घर से बाहर रहना पड़ता है। वे आज के वातावरण में किसी गलत रास्ते पर न चल पड़ें या किसी बीमारी की चपेट में न आ जायें इसका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। संस्कारों पर बल दें, स्वयं संस्कारित हों और बच्चों को भी संस्कारित करें। बच्चों को विवेकी बनायें, ताकि वे उचित अनुचित का निर्णय ले सकें। युवा होते बच्चों की गतिविधियों पर नजर रखें, उनकी मित्रमण्डली पर ध्यान दें। यौन जिज्ञासाएँ शांत करने में माता-पिता मित्रवत् भूमिका निभायें, अपने फेमिली डॉक्टर की भी मदद ले सकते हैं। संबंधित सारगर्भित साहित्य भी पढ़ने दें। नियमित दिनचर्या, उचित खानपान, ध्यान आसन-प्राणायाम अपनायें। योग एवं आहार सम्बन्धी जानकारी आज सर्वसुलभ है। योग, प्राणायाम, ध्यान से शरीर व मन स्वस्थ रहता है। शरीर जहाँ तनाव-रहित रहता है वहीं मन में शुभ विचार, संकल्प जन्म लेते हैं।

हमारी संस्कृति में भोग भी संयम के साथ किया जाता है। बच्चों में यौन शिक्षा के स्थान पर नैतिक एवं योग शिक्षा पर बल दिया जाये, साथ ही उन्हें संस्कारित किया जाये। भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिये आवश्यक है कि नयी-पीढ़ी को 'संयमः खलु जीवनम्' आदर्श वाक्य से परिचित कराया जाये।

शिक्षक आवास 6,
कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय परिसर,
खतौली (उ० प्र०)

जिस प्रकार नवनीत दूध का सारभूत रूप है, वैसे ही करणलब्धि सब लब्धियों का सार है।

प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना-अपना पाप-पुण्य है, अपने द्वारा किये हुये कर्म है। कर्मों के अनुरूप ही सारा संसार चल रहा है किसी अन्य के बलबूते पर नहीं।

प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व अलग-अलग है और सब स्वाधीन स्वतंत्र है। उस स्वाधीन अस्तित्व पर हमारा कोई अधिकार नहीं जम सकता।

फोटो उतारते समय हमारे जैसे हाव-भाव होते हैं वैसा ही चित्र आता है, इसी तरह हमारे परिणामों के अनुसार ही कर्मास्रव होता है।

मुनि श्री समतासागर-संकलित 'सागर बूँद समाय' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्त्ता– श्री बसन्तकुमार जी प्रतिष्ठाचार्य शिवाड़

प्रश्न– केवली के कितने प्राण होते हैं? दस क्यों नहीं होते?

समाधान– धवला पु. 2 गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा 701 के आधार से केवली के निम्नप्रकार प्राण होते हैं।

1. सामान्य केवली - 4 (वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छवास)

2. समुद्घातगत केवली

अ. दण्ड समुद्घात - 3 (कायबल, आयु, श्वासोच्छवास)

ब. कपाट समुद्घात - 2 (कायबल, आयु)

स. प्रतर समुद्घात - 1 (आयु)

द. लोकपूरण - 1 (आयु)

3. अयोग केवली- एकप्राण, (आयु)

दस प्राणों से कम प्राणों के होने का कारण

1. पाँच इन्द्रिय प्राण और मनोबल प्राण सामान्य केवली के क्यों नहीं होते? क्योंकि पाँच इन्द्रियप्राण तो इन्द्रियावरण तथा वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से होते हैं तथा मनोबलप्राण नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से होता है। केवली भगवान् के ज्ञानावरण एवं अन्तराय के क्षयोपशम का अभाव हो जाने के कारण ये 6 प्राण नहीं होते। उनके इन्द्रियाँ एवं द्रव्यमन तो होता है, परन्तु इनके माध्यम से ज्ञान अब नहीं किया जाता। उनके केवली अवस्था में परोक्ष ज्ञान न होकर मात्र प्रत्यक्ष केवलज्ञान होता है।

2. कपाट समुद्घात में श्वासोच्छ्वास प्राण नहीं होता है। क्योंकि मिश्रकाययोग में श्वासोच्छ्वास प्राण का सद्भाव नहीं पाया जाता है।

3. प्रतर एवं लोकपूरण समुद्घात में कायबल प्राण नहीं होता, क्योंकि इसमें कार्मण काययोग होता है। और कार्मण काययोग में अपर्याप्त अवस्था होने के कारण शरीर नामकर्म के उदयजनियत नोकर्मों का ग्रहण नहीं होता।

4. अयोगकेवली के शरीरनामकर्म का अनुदय तथा उपर्युक्त प्रकार से नौ प्राणों का अभाव होने के कारण एकमात्र आयुप्राण ही पाया जाता है।

प्रश्न– केवली के औदयिक भाव कितने हैं, और क्यों?

समाधान – कर्मकाण्ड गाथा 821 के अनुसार सयोगकेवली नामक 13वें गुणस्थान में निम्नलिखित भाव पाये जाते हैं-

1. औपशमिक भाव - कोई नहीं।

2. क्षायोपशमिक भाव - कोई नहीं।

3. क्षायिक भाव - 9 (क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, तथा क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य)

4. औदयिक भाव- 3 (मनुष्यगति, असिद्धत्व, शुक्ल लेश्या)

5. पारिणामिक भाव- 2 (भव्यत्व, जीवत्व)

उपर्युक्त चार्ट के अनुसार सयोगकेवली गुणस्थान में तीन औदयिक भाव होते हैं। मनुष्यगति नामकर्म का उदय होने से एक औदयिक भाव होता है। चार अघातिया कर्मों के विद्यमान रहने और सिद्ध अवस्था अभी प्राप्त न करने के कारण असिद्धत्व रहता है, तथा ईर्यापथ आश्रव एवं योगों की प्रवृत्ति होने के कारण शुक्ललेश्या होने से तीसरा औदयिक भाव होता है, इस प्रकार कुल तीन औदयिक भाव पाये जाते हैं। अयोगकेवली अवस्था में योगों की प्रवृत्ति का अभाव हो जाने से मात्र दो ही औदयिक भाव पाये जाते हैं, शुक्ललेश्या का अभाव हो जाता है।

प्रश्नकर्ता – मनोजकुमार जैन देहली।

प्रश्न – क्या हम आचार्य उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी को भगवान् कह सकते हैं?

समाधान – 1. श्री धवला पुस्तक 13 पृष्ठ 346 पर भगवान् का लक्षण इस प्रकार कहा है- 'ज्ञानधर्ममाहात्म्यानि भगः, सोऽस्यास्तीति भगवान्।'

अर्थ - ज्ञान, धर्म के माहात्म्यों का नाम भग है, वह जिनके है, वह भगवान् कहलाते हैं।

2. मूलाचार गाथा 1006 में इस प्रकार कहा है-

भिक्कं वक्कं हिययं सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुट्ठिद साहू भणिओ जिण सासणे भयवं॥ 1006॥

अर्थ - जो आहार, वचन और हृदय का शोधन करके नित्य ही आचरण करते हैं, वे ही साधु हैं। जिन शासन में सुस्थित साधु भगवान् कहे गये हैं।

3. संस्कृत के सर्वमान्य आप्टे शब्दकोष में भगवत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द के अर्थ में यशस्वी, प्रसिद्ध, सम्मानित, श्रद्धेय, दिव्य, पवित्र, जिनका विशेषण आदि कहे गये हैं।

भगवान् शब्द के उपर्युक्त लक्षणों को दृष्टि में रखते हुए आचार्य उपाध्याय एवं साधुपरमेष्ठी को भगवान् कहना उचित है।

प्रश्नकर्ता – सौ. स्वाति मेहता, पूना

प्रश्न – देवों का शरीर कैसा होता होगा? कुछ समझाइये।

समाधान– मूलाचार गाथा 1053 से 1056 तक में देवों के शरीर के सम्बन्ध में बहुत अच्छा वर्णन किया है। जिसका सार इस प्रकार है-

देवों का शरीर स्वर्ण के समान, उपलेपरहित (मल-मूत्र, पसीना आदि से रहित) घ्राणेन्द्रिय को आह्लादित करनेवाले श्वासोच्छ्वास-सहित, बाल और वृद्ध पर्याय से रहित, आयु पर्यन्त नित्य ही यौवन पर्याय से युक्त, न्यून और अधिक प्रदेशों से रहित, प्रमाणवत् अवयवों की पूर्णतावाले समचतुरस्र संस्थान से युक्त, धातु एवं उपधातुओं से रहित परम सुगन्धीवाले दिव्य शरीर के धारक देव होते हैं॥ 1053॥

देवों के सिर, भौंह, नेत्र, नाक, कान, काँख, और गुह्य प्रदेश आदि स्थानों में बाल नहीं होते हैं। हाथ और पैर की अँगुलियों के अग्रभाग में नख नहीं होते हैं। मूँछ, दाढ़ी के बाल नहीं होते हैं। एवं सारे शरीर पर सूक्ष्म बाल अर्थात् रोम भी नहीं होते हैं। उनके दिव्य शरीर में चर्म-मांस आदि को प्रच्छादित करने वाला तथा मांस और हड्डियों में होने वाला चिकना रस 'वसा' नहीं होता। उनके शरीर में वीर्य, पसीना, हड्डी और शिरासमूह (नसों का जाल) भी वैक्रियिक शरीर होने के कारण नहीं होता है॥ 1054॥

सर्वगुणों से विशिष्ट वैक्रियिक शरीर के योग्य उत्तम वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श से युक्त अनन्त दिव्य परमाणुओं से उनके शरीर के सभी अवयव बनते हैं। वे देव मनुष्य के आकार के समान होते हैं, विविध प्रकार के शरीर आदि को बना लेने की शक्तिवाला वैक्रियिक शरीर होता है। उनके शुभनाम, प्रशस्त गमन, सुस्वर वचन, और मनमोहक रूप होता है। उनके शरीर में मनुष्यों के समान केश, नख आदि के आकार सभी विद्यमान रहते हैं। जैसे स्वर्ण व पाषाण की प्रतिमा में सर्व आकार बनाये जाने से वह अतिशय सुन्दर दिखती है, उसी प्रकार से इनके शरीर में भी अतिशय सुन्दरता पायी जाती है। देवों का शरीर नाना शरीरों के बनाने में समर्थ विभिन्न प्रकार के गुणों एवं ऋद्धियों से युक्त होता है॥ 1055 से 56॥

प्रश्नकर्ता – बाबूलाल जी जैन जयपुर।

प्रश्न – क्या मुनिराजों को तीन काल सामायिक करने का विधान शास्त्रों में पाया जाता है?

समाधान – उपर्युक्त प्रश्न के समाधान में मुनियों के आचार के प्ररूपण करनेवाले मूलाचार ग्रन्थ के निम्न प्रमाण द्रष्टव्य हैं-

1. मूलाचार भाग-1, पृ. 395 गाथा 518 की टीका-

''यस्मिन काले सामायिकं करोति, सकालः पूर्वाह्-नादि-भेदभिन्नाः कालसामायिकं।''

अर्थ- जिस काल में सामायिक करते हैं, पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न आदि भेदयुक्त काल, काल-सामायिक है।

सामायिक करने की विधि का वर्णन मूलाचार में इस प्रकार कहा है-

पडिलिहियअंजलिकरो, उवजुत्तो उट्ठिऊण एयमणो।
अव्वारित्तो वुत्तो करेदि सामाइयं भिक्खू॥ 538॥

अर्थ - प्रतिलेखन सहित अजंलि जोड़कर उपयुक्त हुआ, उठकर एकाग्रमन होकर मन को विक्षेपरहित करके मुनि सामायिक करता है।

आचार्यवृत्ति - जिन्होंने पिच्छी को लेकर अंजलि जोड़ ली है, जो सावधान बुद्धिवाले हैं, वे मुनि खड़े होकर एकाग्रमन होते हुए आगमकथित विधि से सामायिक करते हैं। अथवा पिच्छी से प्रतिलेखन करके शुद्ध होकर, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव शुद्धि को करके प्रकृष्ट रूप से अंजलि को कमलाकार बनाकर अथवा पिच्छिका सहित अंजलि जोड़कर सामायिक करते हैं। मूलाचार गाथा 270 के अनुसार कालाचार के वर्णन में कहा गया है कि सूर्योदय के एक मुहूर्त पहले से एक मुहूर्त बाद तक, मध्याह्न के एक मुहूर्त पहले से एक मुहूर्त बाद तक, सूर्यास्त के एक मुहूर्त पहले से एक मुहूर्त के बाद तक तथा अर्धरात्रि के एक मुहूर्त पहले से एक मुहूर्त बाद तक का काल स्वाध्याय के अयोग्य माना गया है। इसका भी यही कारण प्रतीत होता है, कि सामायिक के इन चार कालों में स्वाध्याय करना उचित नहीं है, इन कालों में सामायिक करनी चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान में कुछ मुनिराज ऐसा कहते हुऐ दिखते हैं, कि हमको सामायिक करने के लिए कोई निश्चित काल नहीं है, हमारे तो सामायिक चारित्र 24 घण्टे रहता है। इसलिये हम सुबह, दोपहर एवं सायंकाल सामायिक नहीं करते हैं। ऐसे मुनिराजों को पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज का निम्नलिखित प्रसंग अवश्य ध्यान देने योग्य है-

एकबार पूज्य आचार्यश्री के दर्शन एवं चर्चा करने हेतु एक प्रदेश की मुख्यमंत्री आनेवाली थीं। मुख्यमंत्री महोदया ने दोपहर 12 बजे से 1 बजे तक का समय कार्यकर्ताओं को बताया। जब कार्यकर्ताओं ने पूज्य आचार्यश्री से मुख्यमंत्री महोदया का दर्शन एवं चर्चा करने हेतु आने का समय बताया, तो पूज्य आचार्यश्री ने कहा कि यह तो हमारे सामायिक का काल है। हम सामायिक कैसे छोड़ सकते हैं? पूज्य आचार्य श्री ने समयानुसार अपनी सामायिक प्रारम्भ कर दी। मुख्यमंत्री महोदया सामायिक के दौरान आईं और दर्शन करके चली गईं।

पूज्य आचार्यश्री का उपर्युक्त प्रसंग इस बात का ज्ञापक है कि परिस्थिति कुछ भी हो, साधु को सामायिक के उपर्युक्त कालों में सामायिक करना परम आवश्यक है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

वेबसाइट प्रारंभ करने की योजना

इंदौर। श्रीफल पत्रिका परिवार आप सभी को यह बताते हुए अत्यंत हर्षित है कि हम जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु एक वेबसाइट प्रारंभ कर रहे हैं। इसमें हम समाज के सभी विद्वानों, जैन पत्र-पत्रिकाओं और जैन सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं के नाम व पते पूर्ण जानकारी के साथ देना चाहते हैं। कुछ हमारे पास हैं पर हमारा प्रयास ज्यादा से ज्यादा जानकारी हमारी वेब-साइट पर देने का है। अतः आपसे सहयोग की अपेक्षा है और निवेदन है कि आप सभी अपने पते व जानकारी हमें हमारे इंदौर कार्यालय के पते पर भेजने का कष्ट करें या जानकारी पत्र इंदौर कार्यालय से मंगवाए। जैन पत्र-पत्रिकाएँ कृपा कर अपनी एक-एक प्रति हमें भेजे ताकि हम भी उन्हें श्रीफल पत्रिका भेज सकें।

पता- बा. ब्र. चक्रेश जैन
संपादक, 'श्रीफल पत्रिका'
206, तिलक नगर एक्स. इंदौर (म.प्र.)

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन ब्रह्मचारी सम्मिलन सम्पन्न

श्रमण संस्कृति के अनुरागियों को जानकर अत्यंत प्रसन्नता होगी कि परम पूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत सान्निध्य में 8-9 दिसम्बर 2007 को अखिल भारतीय दिगम्बर जैन ब्रह्मचारी सम्मेलन 'संवाद' 07 के नाम से श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल जबलपुर में अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना एवं श्रुत संवर्द्धन संस्थान मेरठ के संयुक्त तत्त्वावधान में आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में पूरे देश से लगभग 75 बाल ब्रह्मचारी भाई सम्मलित हुए, जो अनेक सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं, आश्रमों एवं मुनिसंघों के मध्य रहते हुए स्वपरकल्याण में संलग्न हैं।

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने कहा कि- आदहिदं कादव्वं, जं सक्कइ तं परहिदं पि कादव्वं। गृहत्यागी को सर्वप्रथम आत्म कल्याण करना चाहिए, आत्म कल्याण करते हुए सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ पर कल्याण में भी निमित्त अवश्य बनना चाहिए, त्यागी व्रती में दोष निकालना बहुत सरल है पर उस स्थान तक पहुँचना कितना कठिन होता है, अतः कभी भी त्यागी वर्ग की निंदा नहीं करनी चाहिए। आचार्य अकलंक-निकलंक जैसा समर्पण भाव हम सभी के अंदर आ जाये, तो यह संवाद सफल माना जावेगा। साधु संतों की अपनी सीमाएँ हैं, जितना बनता है उतना ही कार्य कर रहे हैं। पर ब्रह्मचारी वर्ग अपनी भूमिकानुसार बहुत कुछ कार्य संस्कृति संरक्षण एवं समाजोत्थान के कर सकता है। सभी प्रतिभाशाली हैं, एकता के सूत्र में बँधकर यदि कार्य योजना बनती है तो बहुत कुछ संभवानायें बनती हैं।

ब्र. संदीप 'सरल'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

अ. भारतवर्षीय श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र (नारेली) अजमेर की पावन धरा पर

नववर्ष 2008, 1 जनवरी को परम पूज्य उपाध्याय श्री 108 उदारसागर जी महाराज पू. ऐलक 105 श्री समर्पणसागर जी महाराज पू. क्षु. 105 श्री संयोगसागर जी महाराज ससंघ का मंगल प्रवेश श्री दि. जैन ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र पर हुआ।

नारेली तीर्थ पर दिनांक 2.1. 2008 को अपने हृदयग्राही प्रवचन में उपाध्यायश्री ने कहा कि पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी द्वारा इस धरा की भूमि के चयन के समय जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की भावना देखी और समझी गई उसी का परिणाम है कि इसका द्रुतगति से विकास एवं ख्याति हुई है।

उपाध्यायश्री ने बतलाया कि तीर्थक्षेत्रों पर दर्शक गण, भक्त-गण इसी आस्था और विश्वास एवं श्रद्धा के साथ आते हैं कि उस परम पावन स्थान विशेष पर उन्हें आत्मिक शान्ति मिलेगी, वातावरण में विशुद्ध परिणाम होंगे, इन्हीं पवित्र उद्देश्यों की पूर्ति हितार्थ इस अत्यन्त प्रभावशाली, प्राकृतिक स्थान पर भव्यात्मा साधना करके अपना कल्याण मार्ग प्रशस्त करेगी। ऐसे ही स्थानों पर व्यक्ति के धर्म साधना करने के भाव बनते हैं।

अंत में उपाध्यायश्री ने सभी महानुभाव धर्म प्रेमी बन्धुओं को आशीर्वाद देते हुए कहा कि ऐसे तीर्थ पर सभी को तन-मन-धन से समर्पण भाव रखते हुए सहयोग देना चाहिए।

भीकमचन्द पाटनी, उपमंत्री,
श्री ज्ञानोदय तीर्थ नारेली

डॉ० सुरेन्द्र जैन 'भारती' का अभिनंदन

अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् के मंत्री डॉ० सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' (वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक-हिन्दी विभाग, सेवासदन महाविद्यालय, बुरहानपुर) का दिनांक २६ दिसम्बर को वाराणसी के गंगा तटवर्ती भदैनी घाट स्थित श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रोफेसर फूलचन्द जैन 'प्रेमी' की अध्यक्षता में हार्दिक अभिनंदन किया गया। अभिनंदन समारोह का संचालन श्री आशीष शास्त्री (शाहगढ़) ने किया। यहाँ उल्लेखनीय है कि डॉ० जैन २७ वर्ष पूर्व इसी महाविद्यालय में रहकर विद्यार्जन कर चुके हैं। वे अपनी निजी यात्रा पर सपरिवार वाराणसी पधारे थे। स्याद्वाद महाविद्यालय परिवार ने अपने ही एक होनहार विद्यार्थी को जैनधर्म, दर्शन, समाज-संस्कृति एवं हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विगत २५ वर्षों में की गई सेवाओं के लिए सम्मानित किया।

इस अवसर पर अपने सम्मान के प्रत्युत्तर में डॉ० सुरेन्द्र 'भारती' ने बताया कि वाराणसी स्थित स्याद्वाद महाविद्यालय में रहकर उन्होंने सब सहपाठियों द्वारा प्रदत्त नेता जी उपाधि की रक्षा करते हुए अपने सभी साथियों एवं संगठनों को सार्थक नेतृत्व प्रदान करने का प्रयत्न किया और सभी का स्नेह प्राप्त किया। उन्होंने अपने जीवन के विकास में पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद वर्णी, माता-पिता, अग्रज-डॉ० रमेशचन्द्र जैन डी०लिट्०, डॉ० अशोककुमार जैन डी०फिल०, डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन, तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रति भक्ति एवं गंगा के स्नेहिल स्पर्श को महत्त्वपूर्ण बताया। अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' ने कहा कि डॉ० सुरेन्द्र जैन 'भारती' ने अपने लगभग चार दशक के जीवन में सात पुस्तकों का लेखन एवं २२ पुस्तकों का संपादन किया है। वर्तमान में वे पत्रकारिता के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाते हुए 'पार्श्व ज्योति' मासिक, 'जिनभाषित' मासिक एवं विद्वद्-विमर्श त्रैमासिक जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओं का संपादन कर रहे हैं। वे अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् जैसी गरिमामयी राष्ट्रीय संस्था के सुयोग्य मंत्री हैं। उन्हें अब तक आचार्य विमलसागर हीरक जयंती सम्मान, स्वयंभू पुरस्कार, वाग्भारती पुरस्कार एवं महाकवि आचार्य ज्ञानसागर सप्तम पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। वे युवकों के लिए आदर्श एवं प्रेरणा स्रोत हैं। उनके अभिनंदन से आज महाविद्यालय स्वयं में अभिनंदित हुआ है।

विश्वविद्यालय में डॉ० सुरेन्द्र 'भारती' का व्याख्यान

संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के श्रमण विद्या संकाय द्वारा अपने विश्वविद्यालय की स्वर्ण जयंती व्याख्यान माला के अंतर्गत जैनदर्शन विभाग के तत्त्वावधान में वाइस चांसलर प्रो० राम जी मालवीय की अध्यक्षता एवं संकायाध्यक्ष प्रो० रमेशकुमार दुबे के मुख्यातिथ्य में सेवासदन महाविद्यालय, बुरहानपुर के हिन्दी विभाग में पदस्थ वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक डॉ० सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' (मंत्री-अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्) का दिनांक १७ दिसम्बर, ०७ को श्रमण विद्या संकाय सभागार में जैनदर्शन की उपादेयता विषय पर शास्त्रीय व्याख्यान आयोजित किया गया।

अध्यक्षीय उद्बोधन में वाइस चांसलर प्रो० राम जी मालवीय ने कहा कि आज डॉ० सुरेन्द्र 'भारती' ने जो धारावाहिक व्याख्यान दिया है वह अद्वितीय है तथा हमारी शास्त्रीय मान्यताओं को वर्तमान समाज से जोड़नेवाला है। उनके प्रस्तुतीकरण से यह सिद्ध हो रहा है। कि वे अपने क्षेत्र के आदर्श शिक्षक हैं। आभार व्याकरण-विभागाध्यक्ष श्री दुबे ने व्यक्त किया। कार्यक्रम का सफल संचालन प्रो० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' ने किया। व्याख्यान से पूर्व डॉ० सुरेन्द्र 'भारती' का काशी की परम्परा के अनुरूप सम्मान किया गया। इस अवसर पर डॉ० भारती की सहधर्मिणी श्रीमती इन्द्रा जैन (प्रकाशिका-पार्श्व ज्योति) भी उपस्थित थीं।

नरेश चन्द्र जैन, पार्श्व ज्योति मंच
न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

शिकायत

कागज की कश्ती
कुछ देर
लहरों में खेली
फिर डूब गयी
उसे शिकायत है कि
किनारों ने
उसे धोखा दिया

नि:शेष

मुझे
कहना है अभी
वह शब्द
जिसे कहकर
नि:शब्द हो जाऊँ
मुझे
देना है अभी
वह सब
जिसे देकर
नि:शेष हो जाऊँ
मुझे
रहना है अभी
इस तरह
कि मैं रहूँ
लेकिन
'मैं' रह न जाऊँ।

एक ईंट

पुरानी
दीवार की
एक ईंट
और गिर गयी
लगता है जैसे
किसी ने पूछा हो
जिन्दगी
और कितनी रह गयी?

उसने कहा

मौत ने आकर
उससे पूछा—
मेरे आने से पहले
वह
क्या करता रहा?
उसने कहा—
आपके स्वागत में
पूरे होश
और जोश में
जीता रहा
सुना है
मौत ने
उसे प्रणाम किया
और कहा—
अच्छा जियो
अलविदा...

'अपना घर' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

हरदा (म.प्र.) ने नया इतिहास रचा

गजरथ के बदले मानवरथ चला

संत शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी के पावन आशीर्वाद से, उनके ही यशस्वी शिष्य मुनिद्वय श्री प्रशांतसागर जी एवं निर्भयसागर जी के सान्निध्य में एवं प्रतिष्ठाचार्य ब्र. श्री विनय भैया जी बंडावालों के कुशलनिर्देशन में गत 11 से 17 फरवरी 2008तक हरदा के इतिहास में पहली बार 1008 श्री पार्श्वनाथ जिनालय (हरसूद से विस्थापित) में निर्मित नवीन वेदी, मानस्तभ एवं कलश की स्थापना एवं प्रतिष्ठा हेतु पंचकल्याणक एवं मानवरथ-महोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। संगीतकार दिल्ली निवासी श्री पारस जैन एवं साथियों ने सस्वर पूजनपाठ एवं भक्ति संपन्न करायी। सत्तर जोड़ों ने पूजा में भाग लेकर विधि विधान से प्रतिष्ठा में सहयोग किया।

महोत्सव में घटयात्रा के लिये विशाल जलूस आयोजित किया गया, रथयात्रा के दिन हरदा में नया इतिहास रचा गया। हाथी पर लकी ड्रा में विजयी भाग्यशाली तीन दानदाता बैठे और गजरथ के स्थान पर मानवरथ चलाया गया, जिसे जैन युवासंघ के उत्साही सदस्यों और बच्चों से लेकर वृद्धों तक ने खींचकर नया इतिहास रचा। संपूर्ण धार्मिक आयोजन निश्चित समय पर संपन्न कराये गये और पांडाल की पवित्रता को अक्षुण्ण रखते हुये पूर्ण अनुशासन में सभी कार्यक्रम प्रतिष्ठाचार्य श्री विनय भैया जी के आदेशानुसार सम्पन्न कराये गये।

मंचीय कार्यक्रमों में स्थानीय महिलामंडल व बालिकामंडल के सदस्यों ने रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इसके अतिरिक्त मंच पर पात्रों के अलावा अन्य व्यवसायिक कलाकारों के कार्यक्रमों को शामिल न कर पंचकल्याणक संस्कृति में नया अध्याय जोड़ा गया। संगीतकार की स्वरलहरियों पर इन्द्रइन्द्रानियों और पात्रों ने भावपूर्ण भक्ति का प्रदर्शन किया।

पंचकल्याणक कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में देवास, होशंगाबाद, खण्डवा और इंदौर आदि जिलों के धर्मानुरागियों ने शामिल होकर कार्यक्रम को सफल बनाया और भूरि-भूरि प्रशंसा की। अंत में संयोजक कमलचंद जैन, पाटनी, एडवोकेट ने पंचकल्याणक को सफलतापूर्वक संपन्न कराने के लिये सभी का आभार माना।

कमलचंद जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org